हरखपुरा जि. महाराजगंज (उ.प्र.) में अनाज, वस्त्र, दक्षिणा व भोजन का वितरण तथा अनगुल (उड़ीसा) में प्रतिमाह अनाज-वितरण ।

खिर्वा रोड, मेरठ आश्रम (उ.प्र.) द्वारा मिठाई, बर्तन, वस्त्र, टोपी व नकद दक्षिणा का वितरण तथा जामनेर समिति जि. जलगाँव (महा.) द्वारा प्रति सप्ताह गरीबों में भोजन-प्रसाद वितरण।

पंचकूला (हरि.) में संकीर्तन यात्रा तथा अदोनी जि. करनुल (आं.प्र.) के विद्यार्थियों में नोटबुक, पेन, पेंसिल, रबर एवं 'बाल संस्कार' पुस्तक का वितरण ।

जोधपुर (राज.) में नशीले पदार्थों की होली तथा धनबाद (झारखण्ड) के अस्पताल में फल, दूध व सत्साहित्य वितरण ।

वर्ष : १७ अंक : १६५ सितम्बर २००६ भाद्रपद-आश्विन वि.सं. २०६३ मूल्य : रु. ६/-

# ऋषि प्रसाद

## इस अंक में



पृष्ठ : २०

पृष्ठ : २२

स्वामी : संत श्री आसारामजी आश्रम
प्रकाशक और मुद्रक : श्री कौशिकभाई वाणी
प्रकाशन स्थल : श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
मुद्रण स्थल : दिव्य भास्कर, भास्कर हाऊस, मकरबा, सरखेज-गांधीनगर हाईवे, अहमदाबाद - ३८००५१
सम्पादक : श्री कौशिकभाई वाणी
सहसम्पादक : डॉ. प्रे. खो. मकवाणा
श्रीनिवास

### सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रु. ५५/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १००/-
(३) पंचवार्षिक : रु. २००/-
(४) आजीवन : रु. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रु. ८०/-
(२) द्विवार्षिक : रु. १५०/-
(३) पंचवार्षिक : रु. ३००/-
(४) आजीवन : रु. ७५०/-

अन्य देशों में
(१) वार्षिक : US $ 20
(२) द्विवार्षिक : US $ 40
(३) पंचवार्षिक : US $ 80
(४) आजीवन : US $ 200

| ऋषि प्रसाद (अंग्रेजी) | वार्षिक | पंचवार्षिक |
|---|---|---|
| भारत में | १२० | ५०० |
| नेपाल, भूटान व पाक में | १७५ | ७५० |
| अन्य देशों में | US $ 20 | US $ 80 |

कार्यालय : 'ऋषि प्रसाद', श्री योग वेदांत सेवा समिति, संत श्री आसारामजी आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, अमदावाद-५.
फोन : (०७९) २७५०५०१०-११.
e-mail : ashramindia@ashram.org
web-site : www.ashram.org

*'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्र-व्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक अथवा सदस्यता क्रमांक अवश्य लिखें।*

# सर्व विद्याओं की आश्रयभूत : ब्रह्मविद्या

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

सभी विद्याएँ ब्रह्मविद्या में समायी हैं। श्रुति कहती है :

**यस्मिन् विज्ञाते सर्वं विज्ञातं भवति।**

'जिस एक को जान लेने से सबका ज्ञान हो जाता है।'

उस ब्रह्मविद्या के लिए शास्त्रों में वर्णन आता है :

**स्नातं तेन सर्व तीर्थं दातं तेन सर्व दानम् ।**
**कृतं तेन सर्व यज्ञं**
**येन क्षणं मनः ब्रह्मविचारे स्थिरं कृतम्॥**

जिसने मन को ब्रह्मज्ञान, ब्रह्मविचार में लगाया, उसने सारे तीर्थों में स्नान कर लिया, सारे दान कर दिये तथा नौचण्डी, सहस्रचण्डी यज्ञ, वाजपेय यज्ञ, अश्वमेध आदि सारे यज्ञ कर डाले।

जैसे कुल्हाड़ा लकड़ी को काटकर अलग-अलग कर देता है, ऐसे ही सर्व दुःखों, चिंताओं और शोकों को काट दे ऐसी है यह ब्रह्मविद्या।

यह विद्या या तो सत्पात्र पुत्र को दी जाती है या सत्शिष्य को। जो सृष्टि के कर्ता हैं, भुवनों के भोक्ता हैं उन ब्रह्माजी ने यह विद्या अपने पुत्र को दी थी । 'अथर्ववेद' अंतर्गत 'मुण्डकोपनिषद्' के प्रथम मुण्डक, प्रथम खण्ड, प्रथम मंत्र के तीसरे व चौथे चरण में वर्णन आता है :

**स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठा-**
**मथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।**

'ब्रह्मांजी ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को समस्त विद्याओं की आश्रयभूत ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया ।'

ब्रह्माजी ने कहा : ''बेटा ! तुझे जो माँगना है माँग ले।''

अथर्वा ने कहा : ''पिताजी ! मैं क्या माँगूँ ? आप सृष्टि के रहस्यों को जानते हैं। जो मेरे हित में है, वही आप दीजिये।''

यह सुनकर ब्रह्माजी प्रसन्न हो गये कि मेरा बेटा अपनी चाह का दास नहीं है। वह मेरे ज्ञान के अनुसार उन्नत होना चाहता है।

ब्रह्माजी का ज्ञान क्या होगा ? हर पिता की भावना रहती है कि मेरा बेटा सर्वोपरि हो, सर्वश्रेष्ठ हो। उन बेटों का दुर्भाग्य है जो माता-पिता की भावनाओं को समझ नहीं पाते। उन बेटियों और बहुओं का दुर्भाग्य है, जो माता-पिता, सास-ससुर एवं गुरु की उदारता का, कृपा का तथा उन्नति के शुभ संकल्प का फायदा नहीं ले पाते।

## सबसे बड़ा सुहृद (मित्र) कौन है ?- परमात्मा।

फरियाद करते हैं : 'माँ बोल-बोल करती है... फलाने मेरे को रोकते-टोकते हैं...' माँ, पिता या गुरु आपको रोकते-टोकते हैं तो आपके हित के लिए, आपके विकास के लिए बेटे ! माता-पिता आपके हितैषी हैं। यह पक्का कर लो।

आपको चाटुकारी अच्छी लगेगी, खुशामद अच्छी लगेगी, फँसानेवालों की मीठी बातें अच्छी लगेंगी लेकिन मुक्त करनेवाले की कटु बात अच्छी लगने लग जाय तो समझो आप बुद्धिमान हो, नहीं तो मूर्ख हो।

ब्रह्माजी अपने बेटे को अतल, वितल, तलातल, रसातल अथवा भूमंडल का सम्राट बना सकते थे, स्वर्ग का राज्य दे सकते थे, परंतु नहीं दिया क्योंकि संसार की सुख-सुविधाएँ भोक्ता को खोखला कर देती हैं। स्वर्ग का सुख भी पुण्य का नाश करके अंत में गिरा ही देता है।

'श्रीमद्भगवद्गीता'(९.२१) में भी आया है कि 'पुण्य क्षीण होने पर मृत्युलोक में आते हैं।'

इसलिए महाबुद्धिमान सृष्टिकर्ता ब्रह्माजी ने अपने पुत्र को सभी विद्याओं में श्रेष्ठ ब्रह्मविद्या दी, अपने आत्मसाम्राज्य का उपदेश देकर अथर्वा को ब्रह्मज्ञानी बनाया। ब्रह्माजी की कितनी सूक्ष्म दृष्टि थी !

# शास्त्र वचनामृत

**ॐ श्रद्धां प्रातर्हवामहे श्रद्धां मध्यन्दिनं परि ।**
**श्रद्धां सूर्यस्य निम्रुचि श्रद्धे श्रद्धापयेह नः ॥**

'हमारे द्वारा प्रातः श्रद्धा का आह्वान किया जाता है, दोपहर में एवं सायंकाल में भी श्रद्धा का आह्वान किया जाता है । हे श्रद्धा देवि ! आप हमें इस संसार में श्रद्धावान बनाइये ।' **(ऋग्वेद : १०.१५१.५)**

**सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि ।**
**सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥**

'समस्त पुण्यों, श्रेय के सम्पूर्ण साधनों और समस्त यज्ञों में जपयज्ञ को ही सर्वोत्तम माना गया है ।'
**(स्कंद पुराण, ब्रा. ब्रह्मो. खण्ड : १.७)**

**प्रमादादपि संस्पृष्टो यथानलकणो दहेत् ।**
**तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम हरेदघम् ॥**

'जैसे आग की चिनगारी भूल से भी छू जाय तो वह जला ही देती है, उसी प्रकार होंठों से हरिनाम का स्पर्श होते ही वह समस्त पापों को हर लेता है ।'
**(स्कंद पुराण, काशी खण्ड, पू. : २१.५७)**

**किमत्र बहुनोक्तेन सर्वकामफलस्पृहः ।**
**कृष्णाय नम इत्येवं मन्त्रमुच्चारयेद् बुधः ॥**
**कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने ।**
**प्रणतक्लेशनाशाय गोविन्दाय नमो नमः ॥**

'इस विषय में बहुत कहने की क्या आवश्यकता, जो सब कामनाओं का फल प्राप्त करना चाहता हो, वह विद्वान मनुष्य **'श्रीकृष्णाय नमः'** इस मंत्र का उच्चारण करता रहे । सबको अपनी ओर खींचनेवाले कृष्ण, सबके हृदय में निवास करनेवाले वासुदेव, पाप-ताप को हरनेवाले श्रीहरि परमात्मा तथा प्रणतजनों का क्लेश दूर करनेवाले भगवान गोविंद को बारंबार नमस्कार है ।' **(पद्म पुराण, उत्तर खण्ड : २७९.१०६, १०७)**
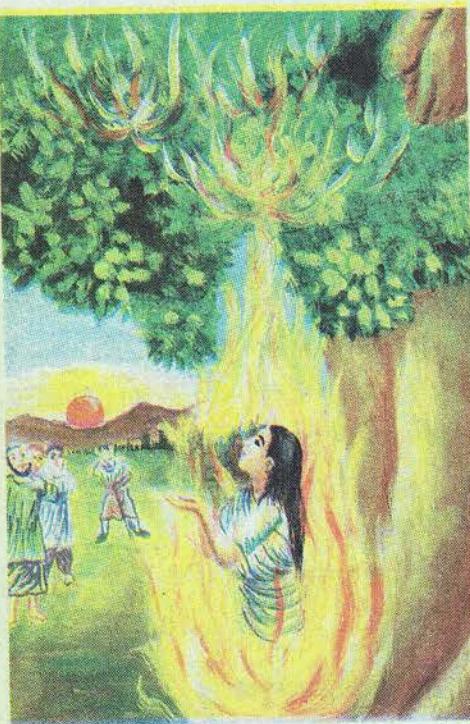
**इदमेव हि माङ्गल्यमिदमेव धनार्जनम् ।**
**जीवितस्य फलं चैतद् यद्दामोदरकीर्तनम् ॥**

'भगवान दामोदर के गुणों का कीर्तन ही मंगलमय है, वही धन का उपार्जन है तथा वही इस जीवन का फल है ।' **(पद्म पुराण, पाताल खण्ड : ९२.१२)**

# श्रद्धा और विवेक

*सूर्य की किरणें उदय हो रही थीं । उसने सूर्यदेव को कहा कि 'मुझे आप ही अग्नि दो ।' और अग्नि की ऐसी भभक-भभक लपटें पैदा हुईं कि जिस पीपल वृक्ष के पास खड़े होकर उसने सूर्य से अग्नि माँगी थी, वह पीपल आधा जल गया । वहाँ के मुसलमान लोगों ने बताया कि यह दृश्य हमने अपनी आँखों से देखा है ।*

**• बापूजी के सत्संग-प्रवचन से**

मनुष्य-जीवन में श्रद्धा और विवेक - ये दो चीजें ईश्वरप्रदत्त हैं । खान-पान का विवेक, औषध का विवेक- शरीर को चलाने का यह सामान्य विवेक तो कीड़े-मकोड़े, पशु-पक्षियों के पास भी है परंतु मनुष्य को वह विवेक दिया गया है कि असत् में से सत् को जान ले, अनित्य से नित्य को अलग कर ले, मरणधर्मा से अमर को पहचान ले, कर्तृत्व-भोक्तृत्व से अकर्तृत्व-अभोक्तृत्व को पहचान ले । दही से मक्खन निकाल लेना, इतना विवेक तो गृहिणी और नौकर लोगों को भी है परंतु असत्, जड़, दुःख रूप नाम और रूप से सत्-चित्-आनंद स्वरूप ईश्वर को खोज लेना यह विवेक की बहादुरी है ।

ऐसा विवेक जगाना है तो क्या करें ? जाने हुए असत् के संग का त्याग कर दो । 'शरीर पहले नहीं था, बाद में नहीं रहेगा, अभी भी नहीं की तरफ जा रहा है तो मैं शरीर नहीं हूँ, शरीर का नाम भी मैं नहीं हूँ ।' इससे बहुत परिश्रम बच जायेगा, बहुत सारी झंझट और कर्मजाल बुनने की गलती से रक्षा होगी । जाने हुए असत् के संग को आप मन से जितना हटाते जाओगे, उतना ही वासना के वेग से आपकी रक्षा होगी । आप जो भी कर्म करो, वासना को पोसने के लिए नहीं, धर्म-अनुसार करो । वासना के पेट में भगवद्-प्राप्ति की माँग डाल दो, बड़ा भारी कल्याण होगा, परम मंगल होगा ।

अगर अपना विवेक नहीं है तो विचारें कि 'रामजी होते तो क्या करते ? बापूजी होते तो गुरुजी से कैसा व्यवहार करते ? राजा जनक होते तो गुरुजी की बात का कितना आदर करते ?' ऐसे ही पत्नी है तो वह 'सीताजी होतीं तो क्या करतीं ?' पति है तो 'भगवान राम होते तो अपनी पत्नी के लिए क्या करते ?' भाई हो तो 'लक्ष्मणजी होते तो कैसा करते ?' इस प्रकार पूर्व के, वर्तमान के और शास्त्रवर्णित पुरुषों के अनुसार अपने व्यवहार को नियंत्रित कर दो तो बहुत कष्टों से बच जाओगे और कर्म में निखार आ जायेगा । श्रेष्ठ पुरुषों

से आदरपूर्वक मैत्री, अपने से छोटों से करुणापूर्ण व्यवहार, मंगल कार्यों का अनुमोदन तथा जो निपट निराले हैं उनसे न दुश्मनी न दोस्ती बल्कि उनकी उपेक्षा। जिस मान, बड़ाई, यश के लिए दुनिया भागी-भागी फिरती है, वे आपके पीछे-पीछे घूमेंगे । यह आपको सारी सफलताओं की कुंजी बता रहा हूँ । ये जागतिक सफलताएँ तो क्या हैं, जैसे भगवान नारायण, शिवजी, ब्रह्माजी अपने सत्-चित्-आनंद स्वरूप में स्थित रहते हैं, वहाँ तक आप पहुँच जाओगे ।

भगवान श्रीकृष्ण, भगवान विष्णु अथवा भगवान शिवजी के दर्शन हो जायें फिर भी असत्, जड़, दुःख रूप शरीर से अपने 'मैं' को पृथक् नहीं जाना तो दुर्भाग्य चालू रहेगा । भगवान श्रीकृष्ण के दर्शन तो शकुनि ने भी किये थे, मोहम्मद पैगम्बर के दर्शन भी कइयों ने किये थे, जीसस के दर्शन उनको क्रोस पर कील ठोकनेवालों ने भी किये थे । क्या हो गया ? विवेक के बिना भगवान नारायण के पार्षद जय-विजय, हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु बन गये; कुम्भकर्ण और रावण बन गये । लेकिन तत्त्वज्ञान का वह विवेक जग गया तो भगवान को बुलाने की मेहनत नहीं करनी पड़ेगी । भगवान को कष्ट नहीं देना पड़ेगा, भगवान जिससे भगवान हैं उसमें आप पहुँच जाओगे । यह बहुत ऊँचा साधन है, बहुत ऊँचा नजरिया है ।

...तो जाने हुए असत् के संग का त्याग करो । बोले : 'त्याग नहीं होता है । जानते हैं बुरा है फिर भी मेरे में काम है, मेरे में क्रोध है, मेरे में यह दुर्गुण है महाराज !' इसमें निराश होने की जरूरत नहीं है, उससे भिड़ने की जरूरत नहीं है, उससे उपराम हो जाओ बस । जैसे, आपका घर सड़क पर है । सड़क पर अच्छा यातायात जाता है, बीच का जाता है या हलका जाता है । आप अच्छे से भी नहीं चिपकते, बुरे से भी नहीं चिपकते, उपराम हो जाते हो, उपेक्षा कर देते हो । इसमें आपका क्या बिगड़ता है ? ऐसे ही अच्छा कर्म होने पर अपने में अच्छेपने का अहंकार लाओगे तो अच्छा कर्म भी बुरा हो जायेगा । बुरी वासना आती है तो 'बुरी वासना मुझमें है' या अच्छे विचार आते हैं तो 'अच्छाई मुझमें है' - इधर ध्यान ही मत दो । अच्छाई भले बढ़े किंतु 'अच्छाई मुझमें है' - ऐसा मत सोचो । बुराई मन में है, उसको सहयोग न दो । अपनेको ईश्वर-चिंतन में लगाओ । अपनेको ऐसा व्यस्त रखो कि बुरी आदतें, बुरा संग, बुरे माहौल से रक्षा हो जाय । कातरभाव से प्रार्थना करो । अगर द्वेष से बुराई करते हो तो प्राणायाम, धारणा, ध्यान से द्वेष शांत होगा । धर्म-अनुसार प्रवृत्ति करो, वासना को महत्त्व न दो । प्राप्त विवेक का आदर करने से विवेक बढ़ता जायेगा ।

मिली हुई जो योग्यता है उसे अपनी मत मानो । 'जो भी योग्यता है, जो भी सत्य है वह हे सत्यस्वरूप ईश्वर ! तेरा है । जो असत् है वह देह का और अहंकार का है । अब मैं अहंकार और देह नहीं हूँ, मैं तेरा हूँ ।' इस प्रकार ईश्वर से अपनापन स्थापित करने से जो रक्षा होती है, जो लाभ होता है वह अपने बल से साधन करने से नहीं होता । वास्तव में हम ईश्वर के थे, ईश्वर के हैं और ईश्वर हमको अपने से अलग कर नहीं सकते । भगवान हमको अलग नहीं कर सकते हैं इतना विवेक हममें भले नहीं है, हम नहीं जान पाते लेकिन महापुरुषों के अनुभव में श्रद्धा करते हैं, शास्त्र में श्रद्धा करते हैं तो भी काम बन जायेगा । जिनके पास विवेक कम है उनके पास दूसरा साधन है - श्रद्धा । श्रद्धा वह बल है जिससे कि जो हम नहीं कर सकते परंतु जिन्होंने किया है उनकी समझ के अनुसार सहमत होकर भी फायदा उठा सकते हैं ।

**श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई ।**

**(श्रीरामचरित. उ.कां. : ८९.२)**

सारे धर्मों का मूल श्रद्धा है । तो सुने हुए ईश्वर-तत्त्व में, ईश्वर के विधान में आस्था करो ।

नैनीताल के पास हरदोई जिले (उ.प्र.) के इकनोरा गाँव में एक परिवार रहता था । उस परिवार

की लड़की का पति कहीं दूर था और लड़की अपने मामा के यहाँ आयी थी । पति बीमार हुआ । समाचार आया कि बीमारी बढ़ गयी है । फिर पता चला कि पति चल बसा । वह सोचने लगी : 'मैं पति की अर्धांगिनी हूँ, पति के बिना अब शरीर रख के क्या करूँगी ?' सतियों का साहित्य या चरित्र पढ़ा होगा । घरवालों को कहा :

''अब मैं इतने मील दूर पहुँचूँगी उसके पहले तो उनका अग्नि-संस्कार हो जायेगा । मैं उनके साथ चिता पर तो नहीं जा सकती, अतः यहीं अपनी चिता...'' घरवालों ने कहा : ''नहीं ।''

रात बीती सोचते-विचारते कि 'मैं अब क्या करूँ ?' प्रभात में घर का जो दीया जल रहा था उसके सामने उँगली रख दी कि 'जल जा ।' तो जैसे मोमबत्ती जलती है ऐसे उँगली भभुक-भभुक जलने लगी । कितना मनोबल ! घरवालों को बुलाया और कहा : ''देखो, मेरे को बाहर कर दो, नहीं तो तुम्हारा सारा घर जल जायेगा ।'' घरवालों ने कहा : ''हाँ, तू बाहर जा । हमारा घर न जले ।'' उसने दीवार पर अपनी उँगली झटका मार के, रगड़ के बुझा दी । करपात्रीजी ने कहा : 'मैंने वह निशान देखा है ।' बाहर गयी, बोली : ''अब लकड़ी और अग्नि दो ।'' घरवालों ने कहा : ''लकड़ी, अग्नि तो हम नहीं देंगे, चाहे कुछ भी हो जाय ।''

सूर्य की किरणें उदय हो रही थीं । उसने सूर्यदेव को कहा कि 'मुझे आप ही अग्नि दो ।' और अग्नि की ऐसी भभक-भभक लपटें पैदा हुईं कि जिस पीपल वृक्ष के पास खड़े होकर उसने सूर्य से अग्नि माँगी थी, वह पीपल आधा जल गया । सुप्रसिद्ध करपात्रीजी महाराज ने कहा कि वहाँ के मुसलमान लोगों ने बताया कि यह दृश्य हमने अपनी आँखों से देखा है । यह बात रामसुखदासजी महाराज ने कही, उनके ग्रंथों में है ।

माने हुए में कितनी अविचल आस्था कि 'मैं सती हूँ और मैं जो चाहूँगी ऐसा होगा ।' पातिव्रत्य था, जीवन भर पति के सिवाय किसीमें भी पुरुषबुद्धि नहीं की, भोगबुद्धि नहीं की । विशेष कुछ पढ़ी-लिखी नहीं थी लेकिन माने हुए, जाने हुए, सुने हुए में आस्था थी । आप इस सती जैसी आस्था न करो तो कम-से-कम सुने हुए में यह आस्था करो कि 'शरीर बदलता है । बचपन बदल गया, जवानी बदल गयी, दुःख बदल गये, सुख बदल गये किंतु कोई ऐसा है जो नहीं बदला । वह अभी भी है ।' यह आपका भी अनुभव है । इसमें आस्था करना । जो अभी है वह मरने के बाद भी चलेगा । असत् शरीर में से सत् को जान लो, अपने साथ मिला लो । शरीर की मौत आये तब भी समझ लेना कि 'मेरी मौत नहीं होती ।' मन में भय आये तो समझना कि 'मुझे भय नहीं है, मन में भय है ।'

स्थूल, सूक्ष्म और कारण - इन तीन शरीरों में से अपने 'मैं' को जानना है, अपने सत् तत्त्व को जानना है । स्थूल शरीर में बीमारी आये तो 'बीमारी मुझमें नहीं ।' सूक्ष्म शरीर में काम, क्रोध, भय, चिंता आयें तो 'ये मुझमें नहीं हैं ।' कारण शरीर में निद्रा आये, बेहोशी आये अथवा प्राणायाम आदि करके, धारणा-ध्यान करके समाधि आये तो 'यह भी मुझमें नहीं है । इन तीनों शरीरों में जो स्थितियाँ होती हैं, उनको जो जानता है वह मैं हूँ ।' तो आप ब्रह्म हो गये ! आप विष्णु हो गये ! आप शिव हो गये ! आप 'मैं', 'स्व-स्वरूप' में नित्य जगे-जगाये हो । जो स्वतःसिद्ध है वह परमात्मा है और जो साधन से सिद्ध है वह महात्मा है । परमात्मा तो सुलभ है लेकिन उसका अनुभव करनेवाला दुर्लभ है ।

**ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।**

**(गीता : १८.६१)**

ईश्वर सबके हृदय में है, सदा है, सर्वत्र है पर उसका अनुभव जो करेगा वह विवेक से करेगा । असत् में से सत् को 'मैं-मेरा' मान लेना - यह बहुत ऊँचा साधन है । यह किये बिना चाहे कितने ही वरदान मिल जायें, कितने ही जन्मों में कितनी ही ऊँचाइयाँ मिल जायें परंतु छूट जायेंगी । जब हिरण्यकशिपु और रावण का सब कुछ छूट गया तो आपका-हमारा कब तक

रहेगा ? तो छूटनेवाले में जो अछूट छुपा है, अनित्य में जो नित्य छुपा है, नश्वर में जो शाश्वत छुपा है उस अपने 'मैं' को मैं रूप से जान लो ।

**बहूनां जन्मनामन्ते...** बहुत जन्मों की कोई यात्रा है, पुण्याई है तभी ऐसा ज्ञान होता है ।

**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते ।**
**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः ॥**

'बहुत जन्मों के अंत के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष, सब कुछ वासुदेव ही है - इस प्रकार मुझको भजता है, वह महात्मा अत्यंत दुर्लभ है ।'

**(गीता : ७.१९)**

परमात्मा बोलते हैं : मैं तो सुलभ हूँ परंतु ऐसा अनुभव करनेवाला महात्मा दुर्लभ है ।

**तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः ।**
**(गीता : ८.१४)**

जो नित्ययुक्त हैं उनके लिए मैं सुलभ हूँ पर ऐसा अनुभव करनेवाला महापुरुष दुर्लभ है ।

**मनुष्याणां सहस्रेषु** हजारों मनुष्यों में **कश्चिद्यतति सिद्धये ।** कोई एक मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है । बाकी सब फँसने के रास्ते चल रहे हैं । 'मकान बनाओ, दुकान बनाओ, इज्जत बनाओ, आबरू बनाओ, यह बनाओ, वह बनाओ, बनाओ-बनाओ-बनाओ...' ...प्रवृत्ति-प्रवृत्ति... सतत प्रवृत्ति में निज विवेक का प्रकाश ही नहीं होता कि 'आखिर कब तक ? संग्रह कब तक ? भोग कब तक ? संयोग का अंत वियोग में है, संग्रह का अंत विनाश में है, भोग की परिणति रोग में है ।' यह विवेक ही नहीं होता बेचारों को । अपना विवेक इतना ऊँचा करो कि अपनी मुक्ति का अनुभव हो जाय ।

ये जो दो महान चीजें मिली हैं - विवेक और श्रद्धा, इनका फायदा उठाओ और जाने हुए असत् के संग का त्याग करके सब दुःखों के सिर पर पैर रखकर इसी जन्म में मुक्ति का अनुभव कर लो, इतना ही मैं चाहता हूँ । समय बड़ा कीमती है और सार-में-सार तथा स्थाई उपलब्धि है यह ।

# जीना कैसे ?

कहीं रहने का यह नियम है कि उपयोगी, उद्योगी और सहयोगी बनकर रहना। जो उपयोगी, उद्योगी और सहयोगी होकर रहता है उसे सभी चाहते हैं और अनुपयोगी, अनुद्योगी और असहयोगी को सभी धिक्कारते हैं। मुझे एक संत ने कहा : ''जहाँ कहीं भी रहना, वहाँ आवश्यक बनकर रहना। वहाँ ऐसा काम करो, इतना काम करो कि वे समझें कि तुम्हारे बिना उनका काम रुक जायेगा। वे तुम्हें अपने लिए आवश्यक समझें। कहीं भी बोझ बनकर मत रहो।''

पहली बात - शरीर को ठीक रखना चाहिए। शरीर में गड़बड़ी होगी तो कोई साथ नहीं देगा- न पुत्र, न पिता, न पत्नी।
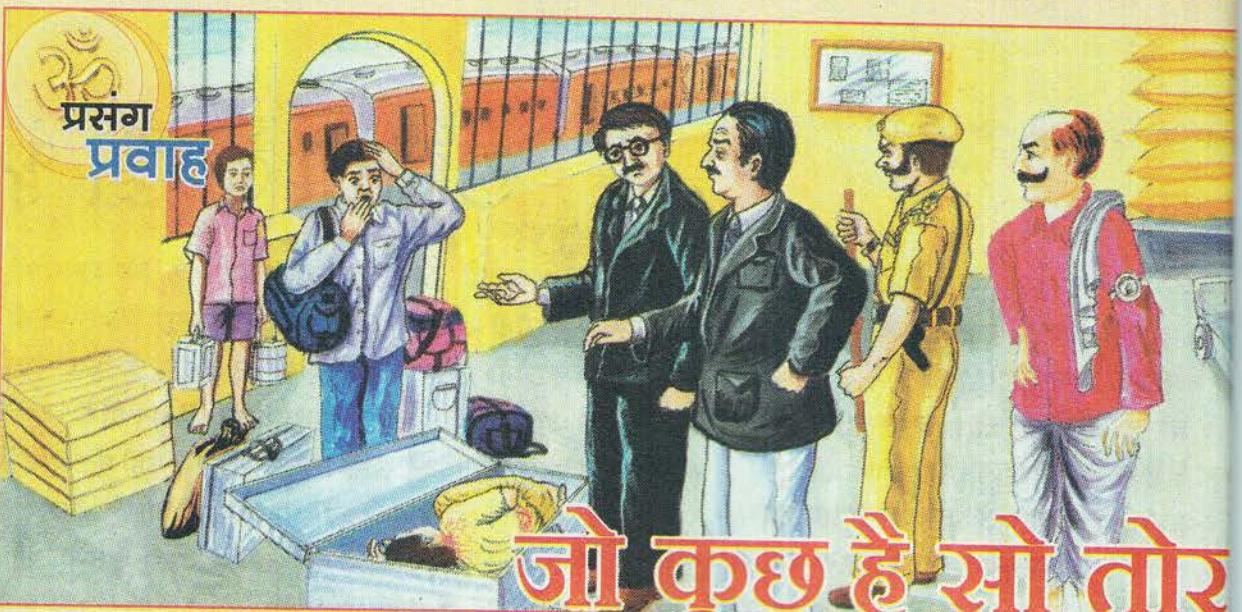
दूसरी बात - निकम्मे रहने का स्वभाव नहीं डालना चाहिए। पहले कुछ लोग इसे पसंद कर सकते हैं किंतु वे साथ नहीं देंगे । इसलिए सदा कर्मठ रहना चाहिए।

तीसरी बात - अपने भोग एवं आराम पर अधिक खर्च नहीं करना चाहिए। मात्र जीवन-निर्वाह के लिए खर्च करना चाहिए; स्वाद पर, मजे पर निर्भर नहीं रहना चाहिए। स्वाद के लिए शरीर को ही आगे करके सबको पीछे नहीं करना चाहिए। जब भगवान से प्रेम करना है तो किसी सांसारिक वस्तु के लिए दुःखी होना ही नहीं चाहिए। हृदय में भक्ति की, प्रेम की पूँजी इकट्ठी करो। ऐसे रहो जैसे उदार सेठ का मुनीम रहता है। मुनीम जानता है कि हम पाँच रुपये दान करेंगे तो सेठ प्रसन्न होगा।

उदार पुरुष का सेवक भी उदार होता है। आप ईश्वर के सेवक बनो। फिर आपमें दोष-दुर्गुण रहेंगे तो भगवान का ही अपयश होगा।

**बंचक भगत कहाइ राम के।**
**किंकर कंचन कोह काम के।।**

• बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

मुंबई स्टेशन पर रेलगाड़ी खड़ी थी । एक अनजान आदमी आया, उसने ट्रेन में एक बक्सा रखा और एक यात्री को कहा : ''इसे जरा देखना, मैं आता हूँ ।'' समय हुआ, गाड़ी चल पड़ी; कई स्टेशन निकल गये पर वे महाशय आये नहीं । आखिर मुंबई से निकली गाड़ी चेन्नई पहुँची । सब यात्री उतर गये पर बक्सा पड़ा रहा । इस यात्री ने सोचा कि 'वह तो आया नहीं । चलो, अपन ही बक्सा उठवा लो ।' यात्री ने कुली को कहा : ''यह सामान भी ले चलो ।''

सामान के साथ थोड़ा बाहर आया तो लगेजवालों ने पकड़ा कि ''एक टिकट पर इतना सारा वजन है ! किसका माल है ?''

इसने कहा : ''हमारा है ।'' और लगेजवालों ने ७ रुपये ६ आने की एक पर्ची फाड़ दी अतिरिक्त वजन के लिए।

फिर बाहर निकला तो कस्टमवालों ने पूछा : ''इतना माल किसका है ?''

यात्री ने कहा : ''मेरा है ।''

''बक्से में क्या है ?''

''चाबी गुम हो गयी है ।''

''चाबी गुम हो गयी तो क्या है ? खोलो इसे ।''

ताला तोड़ा तो अंदर से लाश निकली । अब वह कितना ही कहे कि 'मेरा नहीं है, मेरा नहीं है...' तो भी दफा ३०२ का मुकदमा बन गया । क्योंकि पहले उसने 'मेरा' कह दिया न ? ऐसे ही हम लोग दिन में न जाने कितनी बार 'मेरा, मेरा, मेरा' कहते हैं और हम लोगों के ऊपर भी ३०२ के न जाने कितने मुकदमे दर्ज हो जाते हैं ! उस यात्री पर ३०२ का केस बनता है तो उसको एक बार उम्रकैद की सजा मिलेगी लेकिन हमको तो ८४-८४ लाख जन्मों की सजा मिलती रहती है । उसने तो एक बक्से को 'मेरा' कहा किंतु हमने तो न जाने कितनों को 'मेरा' कहा होगा । यह मकान मेरा है... यह घर मेरा है... रुपये मेरे हैं... गहने मेरे हैं... गाड़ी मेरी है... । जितना अधिक 'मेरा-मेरा' कहते हैं उतने ज्यादा फँसते जाते हैं । मन में जितना-जितना मेरेपने का भाव अधिक होता है उतना-उतना यह जीव जन्मों की परम्परा में जाता है और समय की धारा में सब 'मेरा-तेरा... हैशो-हैशो' करते प्रवाहित हो जाता है । जिसका सब कुछ है वह परमात्मा तेरा है, बाकी सब धोखा है ।

देह तो बनी है माया की मिट्टी से, मन बना है माया के सूक्ष्म तत्त्वों से, उस अनन्त की हवाएँ लेकर तू अपने फेफड़े चला रहा है, उस परमात्मा की सत्ता से सूर्य की किरणें तुझे जिला रही हैं । तेरा अपना क्या है ? सच पूछो तो यह सब देनेवाले परमात्मा की अद्भुत करुणा से प्राप्त है ।

**मेरा मुझमें कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर ।**

जिसकी सत्ता से यह सब लीला हो रही है वह परमात्मा तेरा है । तू उसकी ठीक से स्मृति बना ले तो तेरी ज्ञानमयी दृष्टि जिन पर पड़ जायेगी उनका भी कल्याण होने लगेगा ।

(शारदीय नवरात्रि : २३ सितम्बर से १ अक्टूबर ०६)

# सफलता हेतु आवश्यक
# शक्ति-उपासना

जगत में शक्ति के बिना कोई काम सफल नहीं होता है । चाहे आपका सिद्धांत कितना भी अच्छा हो, आपके विचार कितने ही सुंदर और उच्च हों लेकिन अगर आप शक्तिहीन हैं तो आपके विचारों का कोई मूल्य नहीं होगा । विचार अच्छा है, सिद्धांत अच्छा है, इसलिए सर्वमान्य हो जाता है ऐसा नहीं है ।

चुनाव में भी देखो तो हार-जीत होती रहती है । ऐसा नहीं है कि यह आदमी अच्छा है इसलिए चुनाव में जीत गया और वह आदमी बुरा है इसलिए हार गया । आदमी अच्छा हो या बुरा, चुनाव में जीतने के लिए जिसने ज्यादा शक्ति लगायी वह जीत जायेगा । वास्तव में किसी भी विषय में जो ज्यादा शक्ति लगाता है वह जीतता है । वकील लोगों को भी पता होगा, कई बार ऐसा होता है कि मुवक्किल चाहे ईमानदार हो चाहे बेईमान परंतु जिस वकील के तर्क जोरदार-जानदार होते हैं वह मुकदमा जीत जाता है ।

ऐसे ही जीवन में विचारों को, सिद्धांतों को प्रतिष्ठित करने के लिए बल चाहिए, शक्ति चाहिए ।

जीवन में कदम-कदम पर कैसी-कैसी मुश्किलें, कैसी-कैसी समस्याएँ आती हैं ! उनसे लड़ने के लिए, उनका सामना करने के लिए भी शक्ति चाहिए और वह शक्ति आराधना-उपासना से मिलती है ।

शक्ति की अधिष्ठात्री देवी हैं माँ जगदम्बा और उनकी उपासना का पर्व है नवरात्रि ।

शास्त्रों में आता है :

**या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता ।**
**नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥**

'जो देवी समस्त प्राणियों में शक्तिरूप से स्थित हैं उन माँ जगदम्बा को नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है ।'

नवरात्रि को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है । इसमें पहले तीन दिन तमस् को जीतने की आराधना के हैं। दूसरे तीन दिन रजस् को और तीसरे तीन दिन सत्त्व को जीतने की आराधना के हैं । आखिरी दिन दशहरा है । वह सात्त्विक, रजस् और तमस् तीनों गुणों को जीत के जीव को माया के जाल से छुड़ाकर शिव से मिलाने का दिन है ।

जिस दिन महामाया ब्रह्मविद्या महिषासुररूपी आसुरी वृत्तियों को मारकर जीव के ब्रह्मभाव को प्रकट करती हैं, उसी दिन जीव की विजय होती है इसलिए उसका नाम 'विजयादशमी' है । हजारों-लाखों जन्मों से जीव त्रिगुणमयी माया के चक्कर में फँसा था, आसुरी वृत्तियों के फँदे में पड़ा था । जब महामाया जगदम्बा की अर्चना-उपासना-आराधना की तब वह जीव विजेता हो गया । माया के चक्कर से, अविद्या के फँदे से मुक्त हो गया, वह ब्रह्म हो गया ।

'श्रीमद्देवी भागवत' शक्ति के उपासकों का मुख्य ग्रंथ है । उसमें माँ जगदम्बा की महिमा का वर्णन है । उसमें आता है कि जगत में अन्य जितने व्रत एवं विविध प्रकार के दान हैं वे नवरात्रि व्रत की तुलना कदापि नहीं कर सकते क्योंकि यह व्रत महासिद्धि देनेवाला, धन-धान्य प्रदान करनेवाला, सुख व संतान बढ़ानेवाला, आयु एवं आरोग्य वर्धक तथा स्वर्ग और मोक्ष तक देने में समर्थ है । यह व्रत शत्रुओं का दमन व बल की वृद्धि करनेवाला है । महान-से-महान पापी भी यदि नवरात्रि व्रत कर ले तो संपूर्ण पापों से उसका उद्धार हो जाता है ।

आश्विन शुक्ल प्रतिपदा से नवमी तक शारदीय नवरात्रि पर्व होता है । यदि कोई पूरे नवरात्रि के उपवास-व्रत न कर सकता हो तो सप्तमी, अष्टमी और नवमी - तीन दिन उपवास करके देवी की पूजा करने से वह संपूर्ण नवरात्रि के उपवास के फल को प्राप्त करता है ।

(पूज्य बापूजी का आत्मसाक्षात्कार दिवस : २४ सितम्बर)

# अपरोक्ष आनंद की अनुभूति : आत्मसाक्षात्कार

• बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

जो सभीके दिलों को सत्ता, स्फूर्ति और चेतना देता है, सब तपों और यज्ञों के फल का दाता है, ईश्वरों का भी ईश्वर है उस आत्म-परमात्म देव के साथ एकाकार होने की अनुभूति का नाम है - साक्षात्कार । यह शुद्ध आनंद व शुद्ध ज्ञान की अनुभूति है । इस अनुभूति के होने के बाद अनुभूति करनेवाला नहीं बचता अर्थात् उसमें कर्तृत्व-भोक्तृत्व भाव नहीं रहता, वह स्वयं प्रकट ब्रह्मरूप हो जाता है ।

जैसे लोहे की पुतली का पारस से स्पर्श हुआ तो वह लोहे की पुतली नहीं रही सोने की हो गयी, ऐसे ही आपकी मति जब परब्रह्म परमात्मा में गोता मारती है तो ऋतंभरा प्रज्ञा हो जाती है । ऋतंभरा प्रज्ञा यानि सत्य में टिकी हुई बुद्धि । ऐसा प्रज्ञावान पुरुष जो बोलेगा वह सत्संग हो जायेगा ।

राजा परीक्षित ने सात दिन में साक्षात्कार करके दिखा दिया... किसीने चालीस दिन में करके दिखा दिया... मैं कहता हूँ कि चालीस साल में भी परमात्मा का साक्षात्कार हो जाय तो सौदा सस्ता है । वैसे भी करोड़ों जन्म ऐसे ही बीत गये साक्षात्कार के बिना ।

तुम इंद्र बन जाओगे तो भी वहाँ से पतन होगा, प्रधानमंत्री बन जाओगे तो भी कुर्सी से हटना पड़ेगा । एक बार साक्षात्कार हो जाय तो मृत्यु के समय भी आपको यह नहीं लगेगा : 'मैं मर रहा हूँ ।' बीमारी के समय भी नहीं लगेगा : 'मैं बीमार हूँ ।' लोग आपकी जय-जयकार करेंगे तब भी आपको नहीं लगेगा कि 'मेरा नाम हो रहा है ।' आप फूलोगे नहीं । निंदक आपकी निंदा करेंगे तब भी आपको नहीं लगेगा कि 'मेरी निंदा हो रही है ।' आप सिकुड़ोगे नहीं, बस हर हाल में मस्त ! देवता आपका दीदार करके अपना भाग्य बना लेंगे पर आपको अभिमान नहीं आयेगा, साक्षात्कार ऐसी उच्च अनुभूति है ।

साक्षात्कार को आप क्या समझते हो ? यह तो ऐसा है कि सब्जी मंडी में कोई हीरे-जवाहरात लेकर बैठा हो । लोग सब्जी लेकर और हीरे-जवाहरात देख के चलते जायेंगे । फिर वहाँ हीरे-जवाहरात खोलकर कोई कितनी देर बैठेगा - ऐसी बात है साक्षात्कार की । संसार

## सबसे बड़ा (ऊँचा) ज्ञान क्या है ? - आत्मज्ञान ।

चाहनेवालों के बीच साक्षात्कार की महिमा कौन जानेगा ? कौन सराहेगा ? कौन मनायेगा साक्षात्कार दिवस और कैसे मनायेगा ? इसीलिए जन्मदिन मनाने की तो बहुत रीतियाँ हैं परंतु साक्षात्कार दिवस मनाने की कोई रीति प्रचलित नहीं है । फिर भी सत्‌शिष्य अपने सद्‌गुरु का प्रसाद पाने के लिए उनके साक्षात्कार दिवस पर अपने ढंग से कुछ-न-कुछ कर लेते हैं ।

साक्षात्कार पूरी धरती पर किसी-किसीको होता है । साक्षात्कार धन से, सत्ता से, रिद्धि-सिद्धियों से भी बड़ा है । साक्षात्कारी महापुरुष कई धनवान, कई सत्तावान पैदा कर सकते हैं । कई ऐसे महापुरुष हैं जो लोहे से सोना बना दें । ऐसे भी महापुरुष मैंने देखे जो हवा पीकर जीते हैं, उनके पास अदृश्य होने की भी शक्ति है । ऐसे भी संत मेरे मित्र हैं जिनके आगे गायत्री देवी प्रकट हुईं, हनुमानजी प्रकट हुए, सूक्ष्म शरीर से हनुमानजी उनको घुमाकर भी ले आये परंतु इन सभी अनुभवों के बाद भी जब तक इस जीवात्मा को परमात्मा का साक्षात्कार नहीं होता तब तक वह चाहे स्वर्ग में चला जाय, वैकुंठ में चला जाय, पाताल में चला जाय, सारे ब्रह्मांड में भटक ले पर **'निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा ।'** आत्मसाक्षात्कार के बिना पूर्ण तृप्ति, शाश्वत संतोष नहीं होगा।

भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन के मित्र थे और सारथी बनकर उसका रथ चला रहे थे, तब भी अर्जुन को साक्षात्कार करना बाकी था । उस आत्मसुख की प्राप्ति अर्जुन को भगवान श्रीकृष्ण के सत्संग से हुई, हनुमानजी को रामजी के सत्संग से हुई । राजा जनक को अष्टावक्र मुनि की कृपा से वह पद मिला और आसुमल को पूज्य लीलाशाह बापूजी की कृपा से आज (आश्विन शुक्ल द्वितीया, आसौज सुद दूज) के दिन वह आत्मसुख मिला था ।

**पूर्ण गुरु किरपा मिली, पूर्ण गुरु का ज्ञान ।**
**आसुमल से हो गये, साँईं आसाराम ॥**

इंद्रपद बहुत ऊँचा है लेकिन आत्मसाक्षात्कार के आगे वह भी मायने नहीं रखता । साक्षात्कार के आनंद से त्रिलोकी को पाने का आनंद भी बहुत तुच्छ है । इसीलिए 'अष्टावक्र गीता' में कहा गया है :

**यत्पदं प्रेप्सवो दीनाः शक्राद्याः सर्वदेवताः ।**
**अहो तत्र स्थितो योगी न हर्षमुपगच्छति ॥**

'जिस पद को पाये बिना इंद्र आदि सब देवता भी अपनेको कंगाल मानते हैं, उस पद में स्थित हुआ योगी, ज्ञानी हर्ष को प्राप्त नहीं होता, आश्चर्य है ।'

**(अष्टावक्र गीता : ४.२)**

आत्मसाक्षात्कारी महापुरुष को इस बात का अहंकार नहीं होता कि 'मैं ब्रह्मज्ञानी हूँ... मैं साक्षात्कारी हूँ... इस दुनिया में दूसरा कोई मेरी बराबरी का नहीं है... मैंने सर्वोपरि पद पाया है...'

उस परमात्म-सुख को, परमात्म-पद को पाये बिना, निर्वासनिक नारायण में विश्रांति पाये बिना हृदय की तपन, राग-द्वेष, भय-शोक-मोह व चिंताएँ नहीं मिटतीं । अगर इनसे छुटकारा पाना है तो यत्नपूर्वक आत्मसाक्षात्कारी महापुरुषों का संग करें, मौन रखें, सत्शास्त्रों का पठन-मनन एवं जप-ध्यान करें । निर्वासनिक नारायण तत्त्व में विश्रांति पाने में ये सब सहायक साधन हैं ।

ऐसा नहीं है कि परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया तो कोई आपकी निंदा नहीं करेगा, आपके सब दिन सुखद हो जायेंगे । नहीं... परमात्म-साक्षात्कार हो जाय फिर भी दुःख तो आयेंगे ही । भगवान राम को भी चौदह वर्ष का वनवास मिला था । महात्मा बुद्ध हों या महावीर स्वामी, संत कबीरजी हों या नानकदेव, श्री रमण महर्षि हों या श्री रामकृष्ण परमहंस, स्वामी रामतीर्थ हों या पूज्य लीलाशाहजी बापू विघ्न-बाधाएँ तो सभी देहधारियों के जीवन में आती ही हैं लेकिन इनका प्रभाव जहाँ पहुँच नहीं सकता उस आत्मसुख में वे महापुरुष सराबोर होते हैं ।

जैसे जंगल में आग लगने पर सयाने पशु सरोवर में खड़े हो जाते हैं तो आग उन्हें जला नहीं सकती, ऐसे ही जो महापुरुष आत्मसरोवर में आने की कला जान लेते हैं वे संसार की तपन के समय अपने आत्मसुख का विचार कर तपन के प्रभाव से परे हो जाते हैं ।

(दशहरा : २ अक्टूबर २००६)

# दशहरा : सर्वांगीण विकास का श्रीगणेश

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

दशहरा एक दिव्य पर्व है । सभी पर्वों की अपनी-अपनी महिमा है किंतु दशहरा पर्व की महिमा जीवन के सभी पहलुओं के विकास, सर्वांगीण विकास की तरफ इशारा करती है । दशहरे के बाद पर्वों का झुंड आयेगा लेकिन सर्वांगीण विकास का श्रीगणेश कराता है दशहरा ।

दशहरा दश पापों को हरनेवाला, दश शक्तियों को विकसित करनेवाला, दशों दिशाओं में मंगल करनेवाला और दश प्रकार की विजय देनेवाला पर्व है, इसलिए इसे 'विजयादशमी' भी कहते हैं ।

यह अधर्म पर धर्म की विजय, असत्य पर सत्य की विजय, दुराचार पर सदाचार की विजय, बहिर्मुखता पर अंतर्मुखता की विजय, अन्याय पर न्याय की विजय, तमोगुण पर सत्त्वगुण की विजय, दुष्कर्म पर सत्कर्म की विजय, भोग-वासना पर योग और संयम की विजय, आसुरी तत्त्वों पर दैवी तत्त्वों की विजय, जीवत्व पर शिवत्व की और पशुत्व पर मानवता की विजय का पर्व है । आज के दिन दशानन का वध करके भगवान राम की विजय हुई थी । महिषासुर का अंत करनेवाली दुर्गा माँ का विजय-दिवस है - दशहरा । शिवाजी महाराज ने युद्ध का आरंभ किया तो दशहरे के दिन । रघु राजा ने कुबेर भंडारी को कहा कि 'इतनी स्वर्ण मुहरें तू गिरा दे । ये मुझे विद्यार्थी (कौत्स ब्राह्मण) को देनी हैं, नहीं तो युद्ध करने आ जा ।' कुबेर भंडारी ने, स्वर्ण भंडारी ने स्वर्णमुहरों की वर्षा की दशहरे के दिन ।

दशहरा माने पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और अंतःकरण चतुष्टय - इन नौ को शक्ति देनेवाला अर्थात् देखने की शक्ति, सूँघने की शक्ति, चखने की शक्ति, स्पर्श करने की शक्ति, सुनने की शक्ति - पाँच प्रकार की ज्ञानेन्द्रियों की जो शक्ति है यह तथा मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार - चार अंतःकरण चतुष्टय की शक्ति । इन नौ को सत्ता देनेवाली जो परमात्म-चेतना है वह है आपका आत्मा-परमात्मा । इसकी शक्ति जो विद्या में प्रयुक्त हो तो विद्या में आगे बढ़ते हैं, जो बल में लगे तो बल में आगे बढ़ते हैं, भक्ति में प्रयोग हो तो भक्ति में आगे बढ़ते हैं, योग में हो तो योग में आगे बढ़ते हैं और सबमें थोड़ी-थोड़ी लगे तो सब दिशाओं में विकास होता है ।

एक होता है नित्य और दूसरा होता है अनित्य । जो अनित्य वस्तुओं का नित्य वस्तु के लिए उपयोग करता है वह होता है आध्यात्मिक किंतु जो नित्य वस्तु चैतन्य का अनित्य वस्तु के लिए उपयोग करता है वह होता है आधिभौतिक । दशहरा इस बात का साक्षी है कि बाह्य धन, सत्ता, ऐश्वर्य, कला-कौशल होने पर भी जो नित्य सुख की तरफ लापरवाह हो जाता है उसकी क्या गति होती है । अपने राज्य की सुंदरियाँ, अपनी पत्नी होने पर भी श्रीरामजी की सीता देवी के प्रति आकर्षणवाले का क्या हाल होता है ? हर बारह महीने बाद दे दियासलाई... अनित्य की तरफ आकर्षण का यह मजाक है । एक सिर नहीं दस-दस सिर हों, दो हाथ नहीं बीस-बीस हाथ हों तथा नित्य आत्मा को छोड़कर अनित्य सोने की लंका भी बना ली, अनित्य सत्ता भी मिल गयी, अनित्य भोग-सामग्री भी मिल गयी उससे भी जीव को तृप्ति नहीं होती । और, और, और... की भूख लगी रहती है ।

जो नित्य की तरफ चलता है उसको श्रीराम की नाईं अंतर आराम, अन्तर्ज्योति, अन्तर्तृप्ति का अनुभव होता है और जो नित्य को छोड़कर अनित्य से सुख चाहता है उसकी दशा रावण जैसी हो जाती है । इसकी स्मृति में ही शायद हर दशहरे को रावण को जलाया जाता होगा कि अनित्य का आकर्षण हमारे चित्त में न रहे । शरीर अनित्य है, वैभव शाश्वत नहीं है और रोज हम मौत की तरफ आगे बढ़े जा रहे हैं । कर्तव्य है धर्म का संग्रह और धर्म के संग्रह के लिए मनुष्य-जीवन ही उपयुक्त है ।

जीवन जीना एक कला है । जो जीवन जीने की कला नहीं जानता वह मरने की कला भी नहीं जानता और बार-बार मरता रहता है, बार-बार जन्मता है । जो जीवन जीने की कला जान लेता है उसके लिए जीवन जीवनदाता से

मिलानेवाला होता है और मौत मौत के पार प्रभु से मुलाकात करानेवाली हो जाती है । जीवन एक उत्सव है, जीवन एक गीत है, जीवन एक संगीत है । जीवन ऐसे जीयो कि जीवन चमक उठे और मरो तो ऐसे मरो कि मौत महक उठे... आप इसीलिए धरती पर आये हो ।

आप संसार में पच मरने के लिए नहीं आये हैं । आप संसार में दो-चार बेटे-बेटियों को जन्म देकर सासू, नानी या दादा-दादी होकर मिटने के लिए नहीं आये हैं । आप तो मौत आये उसके पहले मौत जिसको छू नहीं सकती, उस अमर आत्मा का अनुभव करने के लिए आये हैं और दशहरा आपको इसके लिए उत्साहित करता है ।

**मरो-मरो सब कोई कहे मरना न जाने कोई ।**
**एक बार ऐसा मरो कि फिर मरना न होई॥**

'दशहरा' माने दश पापों को हरनेवाला । अपने अहंकार को, अपने जो दश पाप रहते हैं उन भूतों को इस ढंग से मारो कि आपका दशहरा ही हो जाय । दशहरे के दिन आप दश दुःखों को, दश दोषों को, दश आकर्षणों को जीतने का संकल्प करो ।

दशहरे का पर्व आश्विन शुक्लपक्ष की दशमी को तारकोदय के समय 'विजय' नाम के मुहूर्त में होता है, जो कि संपूर्ण कार्यों में सिद्धिप्रद है, ऐसा 'ज्योतिनिर्बन्ध' ग्रंथ में लिखा है ।

**आश्विनस्य सिद्धे पक्षे दशम्यां तारकोदये ।**
**स कालो विजयगेहा सर्वकार्यार्थसिद्धये ॥**

एक होती है आधिभौतिक सिद्धिप्रदता, दूसरी आधिदैविक और तीसरी होती है आध्यात्मिक । मैं तो चाहता हूँ, आपकी आध्यात्मिक सिद्धि भी हो, आधिदैविक सिद्धि भी हो और संसार में भी आप दीन-हीन होकर, लाचार-मोहताज होकर न जीयें, उसमें भी आप सफल हों - ऐसे आपके तीनों बल - भाव बल, प्राण बल और क्रिया बल विकसित हों ।

आप सामाजिक उन्नति में विजयी बनें, आप स्वास्थ्य में विजयी बनें, आप आध्यात्मिक उन्नति में विजयी बनें, आप राजनैतिक उन्नति में विजयी बनें । मैं भगवान श्रीकृष्ण को ज्यादा स्नेह करता हूँ । श्रीकृष्ण कमाल में भी आगे हैं और धमाल में भी आगे हैं । वे कमाल भी गजब का करते हैं और धमाल भी गजब का करते हैं । घर में थे तो क्या धमाल मचा दी और युद्ध के मैदान में अर्जुन को क्या कमाल का उपदेश दिया ! आचार्य द्रोण के लिए 'नरो वा कुंजरो वा' कहलवाने के लिए युधिष्ठिर को कैसी कमाल की युक्तियाँ देते हैं ! श्रीकृष्ण का जीवन विरुद्ध जीवन से इतना संपन्न है कि वे कमाल और धमाल करते हैं तो पूरे-का-पूरा करते हैं । विजयादशमी ऐसा पर्व है कि आप कमाल में भी सफल हो जाओ और धमाल में भी सफल हो जाओ ।

राजा को अपनी सीमाओं के पार कदम रखने की सम्मति देता है आज का उत्सव । जहाँ भी आतंक है या कोई खटपट है वहाँ आज के दिन सीमा लाँघने का पर्व माना जाता है ।

अपने जीवन में जो विघ्न-बाधाएँ हैं उनको भी दबोचने का यह पर्व माना जाता है । सीमाओं पर शत्रु दिखते हैं, उनकी लड़ाई के साधन बदलते हैं लेकिन शत्रुता तो चली आ रही है । पहले डंडे से चलती थी शत्रुता, फिर तीर-कमान आये, बंदूकें आयीं, तोपें आयीं । अब तो बम और रॉकेट आ गये । साधन बदलते हैं परंतु शत्रुता और मित्रता, राग और द्वेष सृष्टि की परंपरा से चले आ रहे थे, चल रहे हैं और चलते ही रहेंगे । एक राग-द्वेष होता है बाहर के जगत में और दूसरा भीतर चलता है । तो दशहरा... दशों विघ्नों को हराने के लिए आपको सफलता देने का एक पर्व चुन लिया भारतीय वैदिक संस्कृति ने ।

आपका जीवन एकांगी नहीं है । केवल माला घुमाने के लिए जीवन नहीं है, केवल संसार से दब मरने के लिए नहीं है अथवा दूसरों पर हुकूमत करने के लिए नहीं है । जीवन में आपको सर्वांगीण विकसित होना चाहिए । हुकूमत करने का भी बल हो, हुकूमत मानने की भी कला हो, भोजन खाने की भी कला हो, पचाने की भी कला हो, बनाने की भी कला हो, खिलाने की भी कला हो और भोजन से संयम करके उपवास में रहने की कला भी इतनी ही जरूरी है ।

विजयादशमी का यह पर्व जीवन के सभी पक्षों को पोषित करने के लिए है । धर्म, समाज, राजनीति, कला, संस्कृति - सबके अद्भुत मिश्रणवाला अगर कोई पर्व है तो वह दशहरा है। ❊

* शरद ऋतु (२३ अगस्त से २२ अक्टूबर २००६) में पित्त प्रकुपित होता है । पित्त दोष की शांति के लिए शास्त्रकारों ने खीर, घी, घी से बना हलवा, मक्खन , किशमिश सेवन का तथा श्राद्ध कर्म का अवसरोचित विधान किया है । ८ सितम्बर से २२ सितम्बर तक श्राद्ध के दिनों में दूध, चावल या उससे बनी खीर का सेवन पित्तशामक है ।
* मध्याह्न के समय पित्त बढ़ता है । धूप में खुले सिर न चलें, सिर पर टोपी या कपड़ा अवश्य रखें ।
* भय, क्रोध, अधिक उपवास, धूप में घूमने और रात्रि जागरण से पित्त बढ़ता है ।
* इन दिनों तुलसी के ५-७ पत्तों के साथ नीम के ५-१० पत्ते चबाकर खाना और नीम की दातुन करना हितावह है । सप्ताह में कम-से-कम एक दिन हरी या सूखी मेथी, ताजी हल्दी, करेला जैसे कड़वे पदार्थ का सेवन अवश्य करना चाहिए ।
* शरद ऋतु में छोटी हरड़ चूर्ण में समान मात्रा में मिश्री मिलाकर ४ ग्राम मिश्रण प्रातः ताजे पानी से लें तो पित्तजनित विकार शांत होते हैं ।
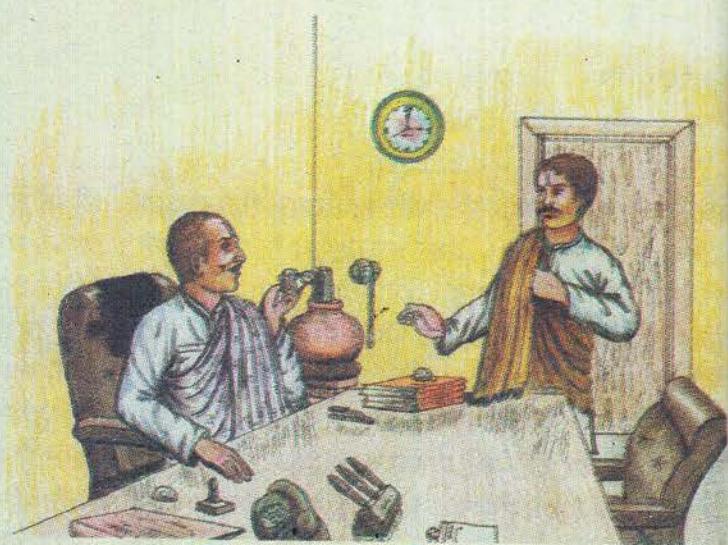
  **'ॐ मुं मुकुटेश्वरीभ्यां नमः ।'** इस मंत्र के जप से पित्तविकार दूर होता है।
* यह कहावत याद रखें और यदा-कदा प्रयोग करें :

**सोंठ शक्कर काली मिर्च,**<br>
**काला नमक मिलाय ।**<br>
**नींबू में रखे चूसिये,**<br>
**पित्त शमन हो जाय ॥**

# कर्तव्यनिष्ठा

मास्टर सूर्यसेन न केवल निर्भीक बल्कि आदर्शवादी अध्यापक भी थे । जब वे बंगाल के एक स्कूल में नियुक्त थे, तब की यह घटना है । एक बार स्कूल में वार्षिक परीक्षा चल रही थी । जिस परीक्षा-भवन में उन्हें नियुक्त किया गया था, उसी भवन में उस स्कूल के प्रधानाचार्य का पुत्र भी परीक्षा दे रहा था ।

अपने कार्य में दक्ष सूर्यसेन सावधानी से विद्यार्थियों का निरीक्षण कर रहे थे । उनकी नजर नकल कर रहे प्रधानाचार्य के पुत्र पर गयी । सच्चाई को जीवन का आधारस्तंभ माननेवाले सूर्यसेन ने उसे रँगे हाथों पकड़ लिया तथा परीक्षा देने से वंचित कर दिया ।

परीक्षाफल निकला तो वह लड़का अनुत्तीर्ण हो गया । प्रधानाचार्य ने सूर्यसेन को अपने कक्ष में बुलाया । यह जानकर अन्य सभी शिक्षक कानाफूसी करने लगे कि अब सूर्यसेन का पत्ता साफ हुआ समझो ।

इधर जब सूर्यसेन प्रधानाचार्य के कक्ष में पहुँचे तो प्रधानाचार्य ने आशा के विपरीत उनका सम्मान किया और स्नेहवश बोले : ''मुझे गर्व है कि मेरे इस स्कूल में आप जैसा कर्तव्यनिष्ठ व आदर्शवादी शिक्षक भी है, जिसने मेरे पुत्र को भी दंडित करने में संकोच नहीं किया । नकल करते पकड़े जाने के बावजूद यदि आप उसे उत्तीर्ण कर देते तो मैं आपको अवश्य ही नौकरी से बर्खास्त कर देता ।''

''यदि आप मुझे अपने पुत्र को उत्तीर्ण करने के लिए विवश करते तो मैं स्वयं ही इस्तीफा दे देता, जो इस समय मेरी जेब में पड़ा है ।'' मास्टर सूर्यसेन का जवाब सुनकर प्रधानाचार्य गद्गद हो उठे । सूर्यसेन के प्रति उनके मन में आदरभाव जगा ।

धन्य हैं ऐसे ईमानदार, गुणपारखी प्रधानाचार्य व धन्य हैं ऐसे आदर्शवादी शिक्षक !

(शरद पूर्णिमा : ६ अक्टूबर २००६)

# भगवत्शरण स्वीकारें

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

व्याख्याता के व्याख्यान का, कथाकार की कथा का कोई निश्चित समय होता है पर जो अपने आपमें, अपने आत्मरस में पूर्णतः तृप्त होते हैं उन महापुरुषों के छलकने का कोई निश्चित समय नहीं होता । वे तो बस, जब उनकी मौज आयी छलक पड़ते हैं । कोयल कब, किस पेड़ पर गायेगी उसे नहीं पता, वह नहीं बता सकती, ऐसे ही दिलबर श्रीकृष्ण कब, कहाँ, किस पर छलक जायें उनका कोई पूर्व निश्चित कार्यक्रम नहीं होता ।

भारतीय संस्कृति की ऋषि-परंपरा ही ऐसी है कि ऋषि अपनी कुटिया में अपने नियमों में रहे, जब परमात्मरस से पूर्णतः तृप्त हुए तब शिष्यों के बीच आये, कुछ सत्संग के वचन बोले और चल दिये । ऐसे ही आत्मरस में सराबोर भगवान श्रीकृष्ण ने एक सुहावनी रात्रि में गोपियों के हृदय-प्रदेश में प्रेमामृत-रस छलकाया था ।

'श्रीमद्भागवत' के दशम स्कंध के उनतीसवें अध्याय में शुकदेवजी महाराज परीक्षित को सत्संग सुनाते हुए कहते हैं : ''प्रेमभाव में रमण करनेवाली गोपियों को शरद पूर्णिमा की रात्रि में उनके पिया भगवान श्रीकृष्ण ने बंसी बजाकर अपने पास बुलाया और अधरामृत (भगवद्रस) का पान कराया ।'' इस धरा का जो सुख है वह विकारी सुख है, काम का सुख है परंतु अधरामृत **न धरति इति अधरा** – इस धरा के सुख से परे का जो सुख है, राम का, आत्मा का सुख है । संसारी सुख भोक्ता की शक्तियों का ह्रास करता है और भगवद्-सुख भक्त की बल-बुद्धि बढ़ाता है व मुक्ति के द्वार खोलता है ।

शरद पूर्णिमा की रात्रि का अँधेरा छाये उसके पहले शरद ऋतु ने वन को लताओं एवं रंग-बिरंगे पुष्पों से सुसज्जित कर दिया । नूतन केसर के समान लाल-लाल पूनम का चाँद वन के कोने-कोने में चाँदनी छिटकने लगा । मानों, वह वन को केसरी सुहावनी चदरिया ओढ़ा रहा हो ।

ऐसे मधुमय वातावरण में मधु को भी मधुत्व देनेवाले भगवान श्रीकृष्ण ने गोपियों को शब्दब्रह्म का प्रसाद देने के लिए बंसी पर मन को हरनेवाली **'क्लीं'** बीजमंत्र की मधुर तान छेड़ दी । अब वे गोपियाँ क्या करें ? **उद्धव ! मन न भये दस-बीस, एक था सो गयो श्याम संग... साँवलिया ले गयो रे...**

गोपियाँ भगवान श्रीकृष्ण का मधुर बंसीनाद सुन खिंच-खिंचकर उनकी ओर आने लगीं । श्रीकृष्ण ने उन्हें वापस घर जाने के लिए भिन्न-भिन्न ढंग से उपदेश दिया पर गोपियाँ पूछती हैं : ''आप हमें उपदेश दे रहे हैं कि अपने-अपने घर चली जाओ । आप ही बताओ कहाँ है हमारा घर ?

सभी जीवों का वास्तविक घर तो आनंद, माधुर्य एवं सुख है । हे आनंद, माधुर्य के भंडार ! आप ही तो हमारे घर हैं । आत्मज्ञान में निपुण महापुरुष आपसे ही प्रेम करते हैं क्योंकि आप नित्य प्रिय एवं अपने ही आत्मा हो । अनित्य एवं दुःखद पति-पुत्रादि से हमें क्या प्रयोजन ? आपके उपदेश के अनुसार भी हमें आपकी ही सेवा करनी चाहिए क्योंकि आप ही समस्त शरीरधारियों के सुहृद हो, आत्मा हो और परम प्रियतम हो ।

अब तक हमारा चित्त सांसारिक काम-धंधों में लगा हुआ था। मनमोहन ! आपने हमारे मन को मोह लिया है।

जिसने आपके शब्दब्रह्म का, अधरामृत का, भगवद्रस का पान कर लिया है, उसका मन फिर दूसरी आसक्तियों में नहीं फँसता है । हे श्यामसुंदर ! हमारा जीवन आपके लिए है, हम आपके लिए ही जी रही हैं ।''

गोपियों की करुणा भरी पुकार सुनकर संपूर्ण योगों के स्वामी पीताम्बरधारी भगवान श्रीकृष्ण गले में वनमाला पहने व मुखकमल पर मंद-मंद मुस्कान लिये दो-दो गोपियों के बीच सहसा प्रकट हो गये । हरेक गोपी संग एक श्रीकृष्ण, ऐसे सहस्रों गोपियों के साथ दिव्य रासोत्सव प्रारंभ हुआ ।


सितम्बर २००६ ऋषि प्रसाद १९

स्वर्ग की दिव्य दुंदुभियाँ अपने-आप बज उठीं । स्वर्गीय पुष्पों की वर्षा होने लगी । श्रीकृष्ण जितने ऊँचे स्वर से रासोचित गान गाते, उससे दुगने स्वर में सभी गोपियाँ 'धन्य कृष्ण ! धन्य कृष्ण !!' का उच्चारण करती हुईं रात भर अपने प्रियतम श्यामसुंदर के साथ रास करती रहीं ।

जिस भूमि पर उस रात्रि में रास हुआ, कीर्तन हुआ, आनंद आया, वहाँ की धूलि गोपियों के चरणस्पर्श से 'गोपीचंदन' कहलायी । लोग आज भी उसे ललाट पर लगाते हैं ।

भगवान जीवों पर कृपा करने के लिए ही मनुष्यरूप में प्रकट होते हैं और ऐसी लीलाएँ करते हैं, जिन्हें देख-सुनकर जीव विकारी रस से उपराम होकर भगवद्रस परायण हो जायें ।

राजा परीक्षित ने शुकदेवजी से पूछा : ''गोपियाँ श्रीकृष्ण को अपना परम प्रियतम मानती थीं । वे कोई उन्हें परात्पर परब्रह्म तो मानती नहीं थीं, अंतर्यामी आत्मा तो मानती नहीं थीं । उनका तो भगवान के प्रति जारभाव था, ब्रह्मभाव नहीं था । उनकी दृष्टि भगवान के प्राकृतिक गुणों में ही आसक्त दिखती है कि श्रीकृष्ण के घुँघराले बाल हैं, उनके मुखकमल की कैसी सुंदर छटा है ! कैसी सौम्यता व हँसी है ! कैसी मधुर चितवन है ! ये तो प्राकृतिक गुण हैं, दिखनेवाले गुण हैं । अप्राकृतिक परब्रह्म के सुख का तो उनको पता नहीं । ऐसी स्थिति में उनके लिए गुणों के प्रवाहरूप इस संसार की निवृत्ति कैसे संभव हुई और उन्होंने आंतरिक रस-अधरामृत कैसे पा लिया ?''

श्री शुकदेवजी महाराज कहते हैं : ''चेदिराज शिशुपाल भगवान से द्वेषभाव से जुड़ा था, गोपियाँ जारभाव से जुड़ी थीं, कंस शत्रुभाव से - भय से जुड़ा था । कोई प्रेमभाव से जुड़ा है, कोई किसी भाव से जुड़ा है किंतु सब जुड़े तो परात्पर ब्रह्म से, सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मा से ही हैं ।''

आप क्या हैं और भगवान से किस भाव से जुड़े हैं- इसका महत्त्व नहीं है । महत्त्व इसका है कि आप किससे जुड़े हैं । खरबूजा छुरे पर गिरे या छुरा खरबूजे पर गिरे, खरबूजा तो उसे रस ही देगा, ऐसे ही आप किसी भी भाव से भगवान से जुड़ो तो आपको भगवद्रस ही मिलेगा । इस भगवद्रस के बिना सच्ची शांति, सच्चा सुख नहीं मिलता । इसे पाने के लिए जप, ध्यान, सुमिरन तो सहायक हैं परंतु शरद पूनम की रात्रि उनमें चार चाँद लगा देती है । ऐसी मंगल रात्रि में आप भी थोड़ा जप, ध्यान करके भगवत्शरण स्वीकारें और परमेश्वर में गोता मारकर भगवद्-सुख, भगवद्रस उभारें ।

## शरद (कोजागरी) पूर्णिमा - विधि तथा महिमा

आश्विन मास की पूर्णिमा को 'कोजागर व्रत' (को जाग्रति-कौन जागता है ?) किया जाता है । उसमें विधिपूर्वक स्नान करके उपवास करे व जितेन्द्रिय भाव से रहे । सायंकाल में चन्द्रोदय होने पर मिट्टी के घृतपूर्ण १०० दीपक जलाये । इसके बाद घी मिलायी हुई खीर तैयार करे और बहुत-से पात्रों में उसे डालकर चन्द्रमा की चाँदनी में रखे । खीर जितनी फैली हुई होगी उतनी अधिक प्रभावशाली होगी । जब एक पहर बीत जाय तब लक्ष्मीजी को वह सब अर्पण करे । तत्पश्चात् भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को वह खीर-भोजन कराये और उनके साथ ही मांगलिक गीत तथा मंगलमय कार्यों द्वारा जागरण करे । उस रात में देवी महालक्ष्मी अपने करकमलों में वर और अभय लिये निशीथकाल (मध्यरात्रि) में संसार में विचरती हैं और मन-ही-मन संकल्प करती हैं कि 'इस समय भूतल पर मेरी पूजा में लगे हुए मनुष्य को मैं आज धन दूँगी ।' प्रतिवर्ष किया जानेवाला यह व्रत लक्ष्मीजी को संतुष्ट करनेवाला है ।

**(नारद पुराण)**

# महान भगवद्भक्त प्रह्लाद

**(गतांक से आगे)**

सारी प्रजा दैत्यर्षि प्रह्लादजी के समान राजा पाकर अपने को धन्य-धन्य मानने लगी । इस खुशी में जो दान-पुण्य किया गया, उसका वर्णन करना लेखनी की शक्ति के बाहर है । राज्याभिषेक के पश्चात् ब्रह्मादि देवता, महर्षिगण एवं विद्वद्गण महाराज प्रह्लाद को आशीर्वादपूर्वक अनेकानेक वरदान देकर अपने-अपने स्थान को चले गये । इतना बड़ा भव्य कार्य भी कहानीमात्र रह गया ।

**उमा कहउँ मैं अनुभव अपना ।**
**सत हरि भजनु जगत सब सपना ॥**

## दैत्यर्षि प्रह्लाद का शासन

राजसिंहासन पर बैठते ही दैत्यर्षि प्रह्लाद ने जिस संयम और नियम के साथ शासनसूत्र को चलाया, वह परम भागवत प्रह्लाद के अनुरूप ही था । दैत्यर्षि के सिंहासनासीन होते ही सारे भूमण्डल में सुखद साम्राज्य के प्रभाव से फिर एक बार सत्ययुग ने अपना सत्ययुगी रूप धारण कर लिया । परलोकवासी हिरण्यकशिपु के आतंकपूर्ण शासनकाल में सारी प्रजा में विशेषकर शांतिप्रिय वैष्णव जनता में जितना ही अधिक भय, कष्ट, अशांति एवं विपत्तियाँ छायी हुई थीं, उतना ही अधिक अभय, सुख, शांति और सम्पत्ति दैत्यर्षि प्रह्लाद के राजत्वकाल में चारों ओर दिखलायी देने लगीं ।

सुशासन की सुविधा के लिए जितने नये नियमों के निर्माण की आवश्यकता होती, उतने ही नियम दैत्यर्षि प्रह्लाद अपने राजपंडितों और तपोधन महर्षियों से सम्मति ले तथा सत् प्रजाजन की रुचि के अनुरूप निर्माण कराते थे । अतएव उनकी प्रजा में, राजसभा में और धर्मप्राण तपोधन महर्षियों में उनके शासन से पूर्ण शांति व संतोष फैल गया ।

राज्य में जिन प्राणियों के कारण शांतिप्रिय प्रजाजनों को कष्ट था, दीन-दुःखियों को त्रास था और निर्दोष धनियों के धन की लूट थी - जिन प्राणियों के अत्याचार से प्रजा के जान-माल की या तो हानि हो रही थी या हानि होने की सम्भावना थी, उन सब अत्याचारियों को, वे चाहे राजकर्मचारी थे, राजसंबंधी थे या प्रजाजन में से थे, अधिकारच्युत कर दैत्यर्षि ने ऐसे आदर्श दंड दिये कि जिससे वे तो सदा के लिए शांत हो ही गये, साथ ही दूसरों को भी वैसे कर्म करने की वासना नहीं रही ।

दैत्यर्षि प्रह्लाद के शासनकाल में चारों वर्ण और चारों आश्रम के धर्मों का ऐसा सुंदर पालन होने लगा कि बहुत ही थोड़े काल में उनके पिता के समय की धर्म एवं धन हीन प्रजा धर्मप्राण एवं सर्वतोभाव से समृद्धिशालिनी बन गयी । जैसे पिता अपने पुत्र की भलाई के लिए सोते-जागते, रात-दिन चिंतित रहता है और उसके लिए नित्य नये-नये उपाय किया करता है, ठीक उसी प्रकार दैत्यर्षि प्रह्लाद भी पुत्र-समान अपनी प्रजा की भलाई में लगे रहने लगे ।

सारे साम्राज्य में मातृहीन प्रजा अपनी माता के अभाव को और पितृहीन प्रजा अपने पिता के अभाव को भूल-सी गयी । दैत्यर्षि प्रह्लाद ने अपनी सभी श्रेणी की प्रजा, जनता और अन्य प्राणियों के भी पालन, पोषण, शिक्षण व संवर्धन के लिए ऐसा सुंदर प्रबंध कर दिया कि किसीको किसी प्रकार की पीड़ा एवं असुविधा नहीं रही । सब लोग अत्यंत प्रसन्न होकर दैत्यर्षि की जय-जयकार करने लगे ।

यद्यपि उनके साम्राज्य में कोई शासन-संबंधी त्रुटि नहीं थी, तथापि अपने शासन-संबंधी गुप्त समाचारों को पाने के लिए उनकी ओर से अनेक गुप्त दूत केवल इसी काम के लिए रखे गये थे कि वे देखते रहें कि शासन में कहाँ पर क्या त्रुटि है ? प्रजा में शासन की ओर से असंतोष तो नहीं है ? इतना ही नहीं, उन गुप्त दूतों को यह भी आदेश था कि वे देखते रहें कि राजा के कार्यों की कहीं पर अनुचित आलोचना तो नहीं हो रही है ?

दैत्यर्षि प्रह्लाद के शासन में देश के कला-कौशल, कृषि-व्यापार आदि लौकिक विषयों की जितनी ही उन्नति हुई उतनी ही उन्नति वेद-वेदांग, स्मृति-पुराण आदि पारमार्थिक आवश्यक शिक्षाओं की भी हुई । उनके पिता के समय साम्राज्य में जितने ही विष्णु-मंदिरों और वैष्णवों के पवित्र स्थानों को तहस-नहस किया गया था, उतने ही अधिक प्रह्लाद के राजत्वकाल में नये-नये विष्णु मंदिरों और वैष्णवों के पवित्र स्थानों का निर्माण तथा पुराने नष्ट-भ्रष्ट मंदिरों, आश्रमों एवं धर्म-स्थानों का जीर्णोद्धार हुआ । **(क्रमशः)**

# दृश्य से द्रष्टा की ओर

• बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

**वसिष्ठ भगवान कहते हैं : ''हे रामजी ! ज्ञानसंवित् की ओर वृत्ति रखना, जगत की ओर न रखना तथा जाग्रत की ओर न जाना, जाग्रत को जाननेवाले की ओर जाना । स्वप्न और सुषुप्ति की ओर न जाना । भीतर को जाननेवाली जो साक्षी सत्ता है उसकी ओर वृत्ति रखना ही चित्त को स्थित करने का परम उपाय है ।''**

आँखों से जो यह जगत दिख रहा है, कान से जो सुनायी पड़ता है, नाक से, जीभ से जो इसका स्वाद आता है उनकी तरफ मत जाना । जाग्रत की तरफ मत जाना, जो जाग्रत को जानता है उस आत्मदेव में जगना ।

वह शुद्ध संवित् है तो आत्मा-परमात्मा का सनातन अंश लेकिन प्रमाद से अंतःकरण के द्वारा बाहर गयी और उसमें शरीर में जीने की वासना बन गयी तो जीव हो गयी । जीव अपने स्वभाव को जान ले, आत्मानुभव में तृप्त हो जाय तो सारे दुःख, सारे क्लेश सदा के लिए मिट जाते हैं। उसके लिए विष भरा वातावरण भी अमृत बन जाता है।

स्वप्न में नहीं डूबे, सुषुप्ति में नहीं डूबे किंतु स्वप्न जिससे भासित होता है कि स्वप्न आया - चला गया, गहरी नींद आयी - चली गयी, जाग्रत के खट्टे-मीठे अनुभव, खट्टे-मीठे स्वाद, रंग-बिरंगे दृश्य आये - चले गये पर जो नहीं गया वह कौन है ? बोले, 'मैं हूँ' तो उसको खोजे, उसमें डूबे । इससे चित्त जल्दी परमात्म-विश्रांति पा लेता है, चित्त के दोष जल्दी-से-जल्दी मिटते हैं । जिसको ईमानदारी की भूख लगी है ईश्वरप्राप्ति की उसके लिए इसके जैसा और साधन मिलना भी बहुत कठिन है । अजपा गायत्री, गुरुमंत्र जप, प्राणायाम, ध्यान व दीर्घ प्रणव का उच्चारण करके ज्ञान-विचार में शांत हो जाय । जाग्रत जिससे दिखता है उसकी ओर आना है तो वह व्यर्थ का समय नहीं खोयेगा । वह जब भी सुनेगा-बोलेगा तो ज्ञान बढ़ाने के लिए, भक्ति बढ़ाने के लिए, वैराग्य बढ़ाने के लिए । परमात्मा की ओर आने के लिए उसका कर्म होगा । समझ लो, उसका आखिरी जन्म है । परंतु जो भगवान की बात करते-करते राग-द्वेष की बात करते हैं, भगवान की बात सोचते-सोचते मन में किसीकी टाँग खींचने की बात आ जाती है तो वे अभी भगवान का माहात्म्य इतना नहीं जानते, अपने जीवन की कीमत इतनी नहीं जानते । जो अपने मनुष्य-जीवन की कीमत जानते हैं वे न राग से प्रेरित होकर फँसते हैं, न द्वेष से तपकर किसीकी टाँग खींचते हैं, वे तो बस भगवान की प्राप्ति के निमित्त लेते-देते हैं, मिलते हैं । जो कुछ हो उससे ज्ञान बढ़े, भक्ति बढ़े, वैराग्य बढ़े, बस । ज्ञान, भक्ति और वैराग्य बढ़ाने के लिए वे लोग यत्न करते हैं । ज्ञान, भक्ति, वैराग्य बढ़ गया तो फिर जगत में होते हुए भी मन जगत में नहीं जायेगा ।

भगवत्सुख में एक बार मन लग गया, फिर संसार का तो क्या इन्द्र का सुख भी कोई मायना नहीं रखता । निष्काम कर्म करते-करते भगवान में विश्रांति होती है । बोलते-चलते समय भी भगवद्भाव में रहते हैं तो आनंद रहता है । ध्यानयोग में आओ तो आँखें बंद होती हैं, कर्मयोग में आओ तो हँसते-खेलते खुली आँख मौज-ही-मौज । भक्तियोग में आओ तो भाव के द्वारा भगवान में विश्रांति मिलती है । भगवद्भक्ति, भगवद्ज्ञान, भगवद्ध्यान के सिवाय इधर-उधर की बात नहीं । हमको लालजी महाराज के प्रति स्नेह क्यों था ? क्योंकि उनका

एक स्वभाव बहुत बढ़िया था, कोई जरा भी इधर-उधर की बात करता तो कहते : 'अरे ! यह क्या बात करते हो ? भक्ति बढ़े ऐसी बात करो, ज्ञान बढ़े ऐसी बात करो, वैराग्य बढ़े ऐसी बात करो ।' खुद भी ज्यादा बात नहीं करते थे, मौन ले लेते थे । दिन भर मौन रहते, शाम को थोड़ा खोलते, सत्संग की कोई किताब सुनते ।

पापी और पुण्यात्मा की पहचान क्या ? कि आत्मशक्ति का, अंतर की प्रेरणा का नश्वर शरीर के लिए, उसके ऐश के लिए खर्च करना यह पापी मनुष्य की पहचान है और शाश्वत आत्मा के लिए शरीर का उपयोग करना यह पुण्यात्मा आदमी की पहचान है । पापी और पुण्यात्मा का ऐसा वर्णन आता है । भाई ! शरीर है तो चलो ज्ञान-ध्यान होगा, इसलिए जरा खिला दिया । ऐसा नहीं कि ऐश-आराम चाहिए, सुविधा चाहिए । सुविधा लेने में जो पड़ता है वह आत्मा का उपयोग करके शरीर को महत्त्व देता है और जो भगवान की तरफ चलता है वह शरीर का उपयोग करके भगवद्भाव, भगवद्ज्ञान को महत्त्व देता है ।

लालजी महाराज को हम इस बात पर और भी स्नेह करते हैं कि अट्ठासी साल की उम्र में भी वे अपना काम लगभग अपने हाथ से कर लेते थे । आँखों में थोड़ी तकलीफ थी इसलिए थोड़ा-बहुत सेवक से काम लेते थे, बाकी तो खुद दूध गरम कर लेते थे, खुद भोजन बना लेते थे अट्ठासी साल की उम्र में । वे बोलते : ''पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, ग्यारहवाँ मन... ये ग्यारह-ग्यारह सेवक रहते हैं मेरे पास, फिर और सेवक की क्या जरूरत है ? यही तो सेवक हैं ।''

अपने लिए ज्यादा सुविधा ढूँढ़ोगे तो संसार की तरफ जाओगे । मन के अनुसार चल के तो जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति की ओर भटक रही है मनुष्य-जाति । उन सबको देखनेवाले परमात्मा की तरफ कौन आता है ? जन्मो और मरो... इकट्ठा कर के छोड़ के मरो, थोड़ा छोड़ के मरो या ज्यादा छोड़ के मरो, मोटा शरीर कर के मरो या पतला कर के मरो, मरो और जन्मो । तो क्या फायदा हुआ मनुष्य-जन्म का ?

सफल माने फल लगा तो सफल, ऐसे ही हृदय में आत्मज्ञान का, परमात्मसुख का फल लगा तो जीवन सफल, नहीं तो विफल हो गया, विफल से भी भद्दा हो गया । समझो, काम करने गये, नहीं हुआ तो ऐसे-के-ऐसे ही वापस आये । अरे ! फेरा विफल गया । यहाँ तो मनुष्य-जन्म ले के आये और ईश्वरप्राप्ति का काम नहीं हुआ तथा गलत कामों में लगे तो फिर नरकों में जायेंगे, और नीचे गिर गये ।
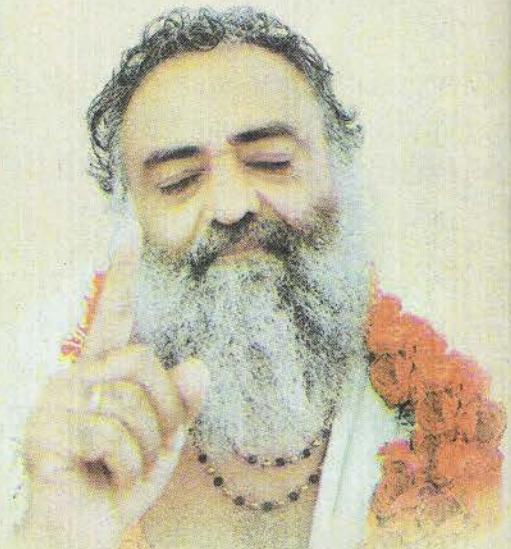
यह पिकनिक स्थान कितना बढ़िया है... यह बच्चा कितना अच्छा लगता है... अरे ! बच्चे का हाड़-मांस अच्छा लगता है ? उसके भीतरवाले की स्मृति कर न मूर्ख ! नहीं तो वही बच्चा दुःख देगा, वही पत्नी दुःख देगी, वही पति दुःख देगा, वही मित्र दुःख देगा । जो आत्मा से अलग मित्र को देखता है वह मित्र से दुःख पायेगा । जो आत्मा से अलग पति को, पत्नी को, स्नेहियों को देखता है वह उनसे दुःख पायेगा । अपने आत्मा में प्रीति नहीं है और दूसरी जगह प्रीति करेगा तो ठोकर खायेगा, दुःख पायेगा, सताया जायेगा, मारा जायेगा, जन्माया जायेगा, मारा जायेगा, जन्माया जायेगा...

इसलिए वसिष्ठजी महाराज के वचन शिरोधार्य कर लें आप और हम कि ''हे रामजी ! जाग्रत की ओर नहीं जाना, जाग्रत जिससे दिखता है उस आत्मदेव की तरफ आना । स्वप्न और सुषुप्ति की तरफ भी मत जाना, उनकी साक्षी जो सत्ता है उस आत्मा-परमात्मा की तरफ जाना, तुरीयावस्था की तरफ जाना ।''

शंभु मुनि ने इक्ष्वाकु राजा से कहा : ''हे राजन् ! तू शुद्ध और राग-द्वेष से रहित, आत्माराम, नित्य अंतर्मुख रह । जब तू आत्माराम होगा तब तेरी व्याकुलता नष्ट हो जायेगी और तू शीतल चंद्रमा-सा पूर्ण हो जायेगा । ऐसा होकर अपने प्राकृत आचार में विचर और किसी फल की इच्छा न कर । जो पुरुष इच्छा से रहित होकर कर्म करता है वह सदा अकर्ता है और महा शोभा पाता है । ऐसी अवस्था में स्थित होकर जो भोजन आये उसको खा ले, जो अनिच्छित वस्त्र आये उसको पहन ले, जहाँ नींद आये, वहाँ सो जा । राग-द्वेष से रहित हो आत्मा की भावना कर, जिससे तेरे दुःख नष्ट हो जायें ।''

# मार्ग अनेक, लक्ष्य एक

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

कुछ लोग कहते हैं : 'कुण्डलिनी शक्ति जाग्रत हो जाय तो योग्यताएँ और सिद्धियाँ मिलती हैं तथा परमात्मा का साक्षात्कार होता है ।' कुछ कहते हैं : 'कुण्डलिनी जाग्रत हो... योग्यताएँ विकसित हों... फलाना हो... इसमें कब तक पड़े रहोगे । योग्यताएँ विकसित हो गयीं तो क्या हो गया ? सीधे मन को एकाग्र करो तो प्राण अपने-आप रुकेंगे ।' कुछ लोग बोलते हैं : 'प्राणों का संयम करो तो मन रुकेगा ।' लेकिन वसिष्ठजी महाराज बड़ी व्यापक बात करते हैं : 'किसीको प्राणों को रोकना आसान लगता है, उसके लिए प्राण उपासना अच्छी है । किसीको मन को रोकना सरल लगता है, उसके लिए मन की एकाग्रतावाली साधना आसान है ।'

भगवान श्रीकृष्ण भी वही बात करते हैं :

**यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते ।**
**एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति ॥**

'ज्ञानयोगियों द्वारा जो परम धाम प्राप्त किया जाता है, कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है इसलिए जो पुरुष ज्ञानयोग और कर्मयोग को फलरूप में एक देखता है, वही यथार्थ देखता है ।' **(श्रीमद्भगवद्गीता : ५.५)**

सांख्ययोग में तीव्र विवेक-वैराग्य के द्वारा जिस आत्मपद की प्राप्ति होती है, वही आत्मपद की ऊँचाई योग के द्वारा भी प्राप्त होती है । ऐसा जो जानता है वह ठीक जानता है । योगवाले बोलते हैं : 'यही रास्ता सही है ।' तो तत्त्वज्ञानवाले बोलते हैं : 'नहीं, यही रास्ता सही है ।' भक्तिवाले बोलते हैं : 'नहीं, भक्ति का मार्ग ही सही है ।' सब अपनी जगह पर अपनी विशेषता लिये हुए हैं । आवश्यकता यह है कि आप उनसे फायदा उठाने की अपनी योग्यता कितनी बढ़ा रहे हैं ।

आप भक्ति के रास्ते हैं तो आपमें भाव की दृढ़ता चाहिए, कर्मयोग के रास्ते हैं तो आपमें निष्कामता की दृढ़ता चाहिए और ज्ञान के रास्ते जाते हैं तो आपके अंदर वैराग्य की दृढ़ता चाहिए । ज्ञानमार्ग में वैराग्य प्रखर हो तो ज्ञान शीघ्र होता है । भक्ति में दृढ़ श्रद्धा और भाव हो तो सफलता आती है । कर्म में क्रिया एवं निष्कामता की प्रधानता है ।

जो शिखर पर पहुँच गये हैं उनको तलहटी से आते हुए लोग दिखते हैं तो वे बोलते हैं : 'तुम इस रास्ते से आ रहे हो, ठीक है, आओ-आओ ।' दूसरे को बोलते हैं : 'तुम उधर मत जाना, इसी रास्ते से चले आओ ।' तीसरे को बोलते हैं : 'तुम जिधर से आ रहे हो, ठीक है ।' परंतु जिन्होंने चलना शुरू ही किया है वे आपस में लड़ रहे हैं कि 'मैं जिस राह से जा रहा हूँ वहाँ से शिखर दिख रहा है । यही रास्ता सही है, वह भटक जायेगा ।' दूसरा बोलता है : 'यह भटक जायेगा ।' तो संघर्ष, झगड़ा या एक-दूसरे को नीचा दिखाना - यह छोटी अवस्था में हो जाता है, ऊँची अवस्था में नहीं होता ।

कच्चा वेदांती भक्ति की काटेगा और कच्चा भक्त वेदांत की काटेगा किंतु पक्का भक्त वेदांत की महिमा को जानता है । भक्तिशास्त्र किसने बनाया ? अज्ञानी ने बनाया कि ज्ञानी ने बनाया ? सच्चा भक्त जानता है कि

भक्तिशास्त्र ज्ञानियों ने बनाया है । सच्चा वेदांती जानता है कि भक्ति भी वेदांत का ही अंग है । द्वेष की जगह कहाँ है ? दोनों एक-दूसरे के पोषक हैं भैया ! वेद में कर्म की महिमा है, ज्ञान की महिमा है, उपासना की महिमा है ।

कर्म, उपासना... उपासना में भक्ति, योग आदि आ गये - ये सब-के-सब भैया ! हमारे अंतःकरण को शुद्ध करने का काम करते हैं । ये पोषक हैं पर बेजवाबदार वेदांती बोलेगा, 'राम-राम' करने से क्या होता है ? और बेजवाबदार भक्त कहेगा, 'वेदांती तो शुष्क होते हैं ।' उन बेचारे भक्तों को पता नहीं कि वेदांत जैसा रस और कहीं हो ही नहीं सकता है और कच्चे वेदांती को पता नहीं कि भक्त के हृदय की भावना की अमृतधारा क्या होती है ! तो बेजवाबदार भक्त वेदांती को देखकर अपना दिल जलाये और कच्चा वेदांती भक्त को देखकर अपना दिल जलाये, यह बात अलग है किंतु जो पक्का वेदांती है अथवा जिनको भक्ति के माध्यम से, योग के माध्यम से या गुरु की कृपा के माध्यम से स्व-स्वरूप का, रामरस का ठीक से भान हो गया है, उनके दिल के द्वार बहुत विशाल होते हैं ।

एक अच्छे संत हो गये । उन्होंने गाया है : 'मैंने दिल के द्वार खोल दिये । फिर कौन आयेगा, कैसा आयेगा - यह विचार मैं नहीं करता हूँ । मेरी निगाह में तो वह राम का ही स्वरूप है, मेरा अपना आपा है । वह चाहे मुझे कुछ भी मान ले परंतु मैं तो उसे अपना स्वरूप ही मानता हूँ ।' सच्चे भक्त, सच्चे वेदांती, सच्चे कर्मयोगी की ऐसी निगाह होती है ।

स्वामी रामतीर्थ को कवि नजीर की रचना प्रिय थी । वे कहते थे :

**कलजुग नहीं करजुग है यह, याँ दिन को दे अरु रात ले ।**
**क्या खूब सौदा नकद है, इस हाथ दे उस हाथ ले ॥**
**यहाँ जहर दे तो जहर ले, शक्कर में शक्कर देख ले ।**
**नेको को नेकी का मजा, मूजी को टक्कर देख ले ॥**
**मोती दिये मोती मिले, पत्थर में पत्थर देख ले ।**
**गर तुझको यह बावर नहीं, तो तू भी करके देख ले ।**
**दुनियाँ न जान इसको मियाँ, दरिया की यह मँझधार है ।**
**औरों का बेड़ा पार कर, तेरा भी बेड़ा पार है ॥**

इसीको वेदांत ने कहा : 'निष्काम कर्मयोग' और भक्ति ने कहा : 'सबमें भगवान है - सबकी सेवा करो ।' बात तो एक ही है ।

१. सतानेवाला, दुःख देनेवाला २. निश्चय, यकीन

काव्य गुंजन

# गुरु पारस संकल्प

अन्तर का तम नाश कर, देते दिव्य प्रकाश।
गुरु के कृपा-कटाक्ष से, कट जाते भव-पाश॥
देहरूप हैं वे नहीं, वे हैं आत्मस्वरूप ।
जन्मभूमि सौभाग्य की, पावन परम अनूप॥
शुचिता के शृंगार वे, जीवन के उल्लास।
आदर्शों के कुंज में, मृदुता के एहसास॥
पर्वत से ऊँचे बड़े, सागर से गम्भीर।
ताप-शाप मिटाने हेतु, शीतल मंद समीर॥
लौह-सदृश हम जीव हैं, गुरु पारस-संकल्प।
सदुपदेश-संस्पर्श से, करते काया-कल्प॥
जीवन का जो सत्य है, उसका कर संधान।
जाड्य-तुषार विनाशते, हर लेते अज्ञान॥
रहकर भी संसार में, रहते सदा निर्लेप।
जैसे जल में कमल रहे, बिल्कुल ही अलेप॥
जो अपकारी लोग हैं, वंचकता की खान।
उनका भी हित चाहते, होवे जग-कल्याण॥
परहितचिंतन में निरत, जो हैं ज्ञानसमृद्ध।
कालजयी व्यक्तित्व वे, सतत साधनासिद्ध॥
पूर्णकाम निष्काम वे, करुणा के आगार।
उनकी वाणी में निहित, धर्म-कर्म का सार॥
दुराराध्य हैं वे नहीं, वे हैं नहीं असाध्य।
हैं सजीव तपरूप वे, जन-जन के आराध्य॥

- डॉ. गणेशदत्त सारस्वत
सीतापुर (उ.प्र.)।

# भगवान ने कलियुग बनाया ही क्यों ?

● बापूजी के सत्संग-प्रवचन से

कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि 'भगवान ने यह कलियुग बनाया ही क्यों ?' सतयुग में आदमी का मन सहज ही भगवान की तरफ चलता था । घरों को ताले लगाने की जरूरत नहीं थी, कोर्ट-कचहरी की जरूरत नहीं पड़ती थी । आदमी बेईमान ही नहीं थे तो कोर्ट-कचहरी क्या करें ? क्यों करें ? सबके अंदर त्याग, वैराग्य था । एक कमाता था, सौ खाते थे, बड़े मजे से जीते थे । फिर त्रेता आया, थोड़ा-सा मन इधर-उधर हुआ । मनुष्य थोड़े संग्रही, थोड़े भोगी हुए । द्वापर आया तो यह सब और ज्यादा हो गया । कलियुग में तो तौबा ! तौबा ! हाय राम ! जिनके पास है उन्होंने 'और चाहिए और चाहिए...' में नींद खपा दी, शांति खपा दी लेकिन संग्रह की वासना नहीं खपी (पूरी हुई) और जिनके पास नहीं है वे पाने की कामना में खपे जा रहे हैं ।

अभी दुनिया की जो वैभव-सम्पदा है उसका ८०% केवल २०% लोगों के पास है और बाकी के ६०% लोगों के पास दुनिया की १९% सम्पदा है । ८० और १९, कुल ९९% सम्पदा हो गयी । बाकी के जो २०% लोग हैं उनके पास केवल १% है । एक जगह ८०%, दूसरी जगह १% एक को मिलता है । मानों किसी स्थान में १०० व्यक्ति भोजन करने गये, १०० थालियाँ हैं । उनमें से बलवान २० व्यक्तियों ने ८० थालियाँ हड़प लीं । मध्यम शक्तिवाले ६० व्यक्तियों को १९ थालियाँ मिलीं और दुर्बल २० व्यक्तियों को १ थाली ही मिली।

जिन्होंने ८०% संग्रह करके रखा है वे अगर १% भी संग्रहखोरी छोड़ दें तो जो बेचारे ६-६ आदमी एक कमरे में सड़ रहे हैं, उनको दो कमरे मिल जायेंगे । जिन बेचारों को साइकिल है उनको छोटा-मोटा मोपेड आ जायेगा, जो १५०० रुपये की नौकरी करते हैं उनको ३००० रुपये मिल जायेंगे और ३००० रुपयेवाले को ६००० परंतु संग्रहवाला संग्रह के बोझ से मर रहा है और अभाववाला अभाव के ताप से तप रहा है । संग्रहवाले चिंता, विलासिता की खाई में गिर रहे हैं और जिनके पास नहीं है वे बेचारे अभाव में शोषित हो रहे हैं । तो ऐसा कलियुग भगवान ने बनाया क्यों ? चलो, बनाया तो बनाया लेकिन कम-से-कम ऐसा करते, जो अति संग्रह करते हैं उनको पागल बना देते या जो किसी पर बुरी नजर करता है उसको अंधा बना देते तो कोई बुरी नजर नहीं करेगा, कोई चोरी करता है तो उसी समय उसके हाथ गल जायें या लकवा मार जाय- भगवान ने ऐसा क्यों नहीं किया ? ऐसा भी सवाल करनेवाले कर लेते हैं, सोचनेवाले सोच लेते हैं ।

मैं पूछता हूँ कि आपका बेटा अगर चोरी करे तो आप उसके हाथ काटना चाहेंगे ? बोले : नहीं ! बच्चा है, देर-सवेर सुधरेगा ।

आपका बेटा अति संग्रह करता है और आप त्यागी हैं तो क्या उसको पागल करना चाहेंगे ? बोले : नहीं !

आपका बेटा बुरी नजर से देखता है तो उसकी आँख निकालना चाहेंगे आप ? बोले : नहीं !

आपका बेटा तो पाँच-पचीस साल से है परंतु आप तो ईश्वर के सनातन बेटे हो । जब पाँच-पचीस साल के पिता-पुत्र के संबंध के कारण पिता इतना उदार हो सकता है तो ईश्वर से तो सनातन संबंध है, वह भी उदारता रखता है कि अभी नहीं तो बाद में सुधरेगा । इस बार नहीं, इस जन्म में नहीं, इस चोले में नहीं तो दूसरे में सुधरेगा । देर-सवेर सुधर जायेगा । फिर यह सवाल आ के खड़ा होता है कि भगवान ने कलियुग बनाया ही क्यों कि ऐसी बुद्धि हो जाय ?

'श्रीमद्भागवत' में एक बात आती है - भक्ति कहती है नारदजी को कि 'नारदजी ! भगवान ने ऐसे कलयुग को स्थान क्यों दिया ? मुझे समझ में नहीं आता है ।' भक्ति भगवान की फरियाद नहीं करती है, लोगों के प्रश्न को दुहराती है ।

बेटा ठिठुर रहा है, माँ ने चादर ओढ़ा दी । बाप आया घर में, दूसरी चादर डाल दी । बाप भोजन कर रहा है । माँ

ने देखा कि अभी भी ठिठुर रहा है, तीसरी चादर डाल दी । भोजन के बाद घूमने जाते समय बाप ने फिर से बेटे का मुखड़ा देखा । पाया कि बेटा अभी भी ठिठुर रहा है । बाप ने तीनों चादरें उठाकर फेंक दीं । माँ ने कहा : 'यह ठिठुर रहा है, आपने तीनों चादरें क्यों फेंक दीं ?' बोले : 'चादर ओढ़ायी कि इसको ठंड न लगे किंतु इसके गहरे मन में ठंड घुस गयी है । अब यह पौष महीने की ठंडी नहीं पचायेगा तो ज्येष्ठ की गर्मी कैसे पचायेगा ? और सर्दी-गर्मी नहीं पचायेगा तो बरसात को कैसे हजम करेगा ? यह तो बीमार हो जायेगा, कमजोर हो जायेगा, इसलिए इसको ठिठुरने दो जरा ।'

ऐसे ही भगवान ने कलियुग बनाया ताकि लोग ठिठुर के मजबूत हो जायें तो मुक्ति को भी पचा सकें और जीवन को भी पचा सकें । जीवन जीने की कला सीख सकें ठिठुरते हुए ।

पहले 'मोक्ष कुटीर' की चारदीवारी थी । उस चारदीवारी की दीवाल पर नारायण को मैं खड़ा कर देता और खुद नीचे खड़ा रहता । मैं बोलता : 'आओ ।' पहले हिचकिचाता था, बाद में कूदने लग गया । कूदते-कूदते उसका मनोबल विकसित हुआ । फिर बचपन में जंगल में या इधर-उधर कहीं भी अकेला जाता तो डरता नहीं था । कभी-कभी बच्चा गिर पड़ता है तब माँ उसको उठाने नहीं भागती ताकि वह अपने-आप उठे, अपने बल से उठे । ऐसे ही कलियुग, गिरानेवाला युग भगवान ने इसलिए बनाया कि बच्चा गिरे और फिर सत्संग, साधना करके अपने-आप उठे क्योंकि मेरा सपूत है ! इसलिए भगवान जो करते हैं अच्छे के लिए करते हैं । कुम्हार बाहर से घड़े को चोट मारता है पर भीतर हाथ भी रखता है । ऐसे ही परमात्मा विघ्न-बाधाओं, मुसीबतों की चोट तो मारता है किंतु सत्संग, साधन-भजन, प्रार्थना करने पर कई बार असहाय घड़ियों में सहायता भी मजे की पहुँचाता है - यह भी तो उसकी करुणा है !

# संत एकनाथ महाराज की वाणी
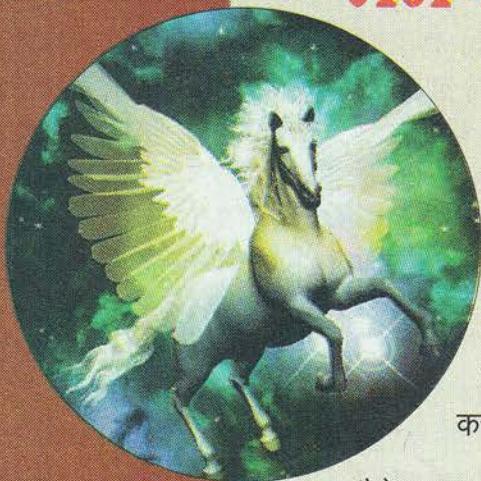
**हरि म्हणा बोलतां हरि म्हणा चालतां । हरि म्हणा खेळतां बाळपणीं ॥**
**म्हणा हरिनाम पुसती सकळ काम । हरिनामें ब्रह्म हातां चढे ॥**
**हरि म्हणा उठतां हरि म्हणा बैसतां । हरि म्हणा पाहतां लोकलीला ॥**
**हरि म्हणा आसनीं हरि म्हणा शयनीं । हरि म्हणा भोजनीं ग्रासोग्रासीं ॥**
**हरि म्हणा एकटीं हरि म्हणा संकटीं । हरि धरा पोटीं भाव बळें ॥**
**हरि म्हणा एकांती हरि म्हणां लोकांतीं । हरि म्हणा अंतीं देहत्यागीं ॥**
**हरि म्हणा स्वार्थी हरि म्हणा परमार्थी । हरि म्हणा ब्रह्मप्राप्तीलागीं ॥**
**हरि म्हणा निजनिधी हरि म्हणा आनंदी । हरि परमानंदी आनंद तो ॥**
**हरि म्हणा जनीं हरि म्हणा विजनीं । एका जनार्दनीं हरि नांदें ॥**

**अर्थ :** बोलते-चलते हरि का नाम लो । बाल्यावस्था में खेलते हुए भी हरि का नाम लो । हरिनाम लेने से सभी इच्छा-वासनाएँ नष्ट होंगी तथा ब्रह्म को हस्तामलकवत् (हथेली पर रखे आँवले की भाँति) जान लोगे । उठते हुए हरिनाम लो, बैठते हुए हरिनाम लो । जगत का व्यवहार देखते हुए भी हरिनाम लो । आसन पर बैठे हों तब या सोते समय हरिनाम लो । भोजन करते समय प्रत्येक ग्रास के साथ हरिनाम लो । अकेले होने पर या किसी विपत्ति में फँस जाने पर भी हरिनाम लो तथा दृढ़ भाव के बल से हरि को अपने हृदय-मंदिर में धारण करो । एकांतवास में हो या लोक-संपर्क में, आप सदैव हरिनाम लो । जीवन के अंतिम समय में, देहत्याग करते वक्त भी श्रीहरि का नाम लो । स्वार्थ से बोलो, चाहे परमार्थ के लिए बोलो लेकिन बोलो तो वही एक श्रीहरि का पावन नाम ! ब्रह्मप्राप्ति की लगन लगी हो तो भी हरिनाम लो । पूरे अंतःकरण से, आनंद से हरिनाम लो क्योंकि इससे प्राप्त आनंद श्रीहरि के परमानंद पद में स्थिति करानेवाला है । लोगों के साथ हों या विराने में हों, आप हरि बोलो क्योंकि श्रीहरि सर्वत्र व्याप्त हैं ।

विचार मंथन

# समयरूपी घोड़ा भागा जा रहा है...

'अथर्ववेद' का एक मंत्र है :

**कालो अश्वो वहति सप्तरश्मिः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।**
**तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्रा भुवनानि विश्वा ॥**

'कालरूपी घोड़ा विश्वरूपी रथ का वाहक है और वह रथ सात किरणों, सहस्र नेत्रों तथा अत्यधिक पराक्रम से युक्त एवं जरा से रहित है, समस्त लोक उसके चक्र हैं । बुद्धिमान लोग ही उस रथ पर आरोहण करते हैं ।'

**(अथर्ववेद : कांड १९, सूक्त ५३, मंत्र १)**

**मित्र हमारा समय खा जाते हैं, सुख हमारा समय खा जाते हैं । वे हमें बेहोशी में रखते हैं । जो करना है वह रह जाता है और जो नहीं करना है उसे सँभालने में ही जीवन खो जाता है ।**

जैसे घुड़सवार घोड़े को नियंत्रित कर लेता है, वैसे ही बुद्धिमान लोग अपने समय को सुनियोजित करके उसे सत्प्रयोजनों में लगा लेते हैं ।

समय ऐसा अमूल्य धन है जिस धन की किसीके साथ तुलना नहीं की जा सकती । गया हुआ धन, खोया हुआ स्वास्थ्य, गँवाया हुआ राजपाट, हारी हुई कुर्सी, खोयी हुई इज्जत भी लोग फिर से अर्जित कर लेते हैं किंतु बीते हुए समय को आज तक कोई माई का लाल वापस नहीं ला पाया । एक चित्रकार ने विचित्र चित्र बनाया । उसमें चित्रित पुरुष का मुँह बालों से ढँका हुआ था । सामान्यतः मनुष्य के सिर पर बाल रहते हैं और सामने ललाट खुला रहता है किंतु उस पुरुष को आगे बाल थे, पीछे टाल थी एवं पैरों में पंख लगे हुए थे । लोगों ने पूछा : ''ऐसा चित्र किस निमित्त से बनाया है ? यह किसकी खबर दे रहा है ?''

चित्रकार बोला : ''यह समय का चित्र है । समय आता है मुँह ढँककर, पता नहीं चलता कि कौन-सा समय है ? बीतता है ऐसे जैसे गंजे के सिर के बाल झड़कर टाल रह जाती है और जाता है तो मानों, पैरों में पंख लगाकर उड़ जाता है ।''

बचपन आया और बचपन के खेल पूरे हुए-न-हुए कि जवानी आ जाती है । जवानी का जोश दिखा-न-दिखा, बुढ़ापा आकर जीवन पर हस्ताक्षर कर देता है और बुढ़ापा कब मृत्यु में बदल जाय, कोई पता नहीं ।

समय देकर आज तक आपने जो कुछ भी पाया है, उन सबको लौटाकर भी आप बीता हुआ समय वापस नहीं ला सकते । मि. कूलिज चार साल तक अमेरिका के राष्ट्रपति रहे । उनके मित्रों ने उनसे कहा : ''आप फिर से चुनाव लड़ो । समाज में आपका बड़ा प्रभाव है । आप फिर चुने जाओगे ।''

कूलिज ने कहा : ''चार साल मैंने 'व्हाइट हाउस' में रहकर देख लिया । राष्ट्रपति पद सँभालकर देख लिया । कोई सार नहीं । खुद को धोखा देना है, समय बर्बाद करना है । अब मेरे पास बर्बाद करने के लिए समय नहीं है ।''

स्वामी रामतीर्थ प्रार्थना किया करते थे : ''हे प्रभु ! मुझे मित्रों से बचाओ, मुझे सुखों से बचाओ ।''

सरदार पूरन सिंह ने कहा : ''आप यह क्या कह रहे हैं स्वामीजी ? शत्रुओं से बचना होगा, मित्रों से क्या बचना ?''

रामतीर्थ : ''नहीं, शत्रुओं से मैं निपट

लूँगा, दुःखों से मैं निपट लूँगा; दुःख में कभी आसक्ति नहीं होती, ममता नहीं होती । ममता, आसक्ति जब हुई है तब सुख से हुई है, मित्रों से हुई है, स्नेहियों से हुई है ।''

मित्र हमारा समय खा जाते हैं, सुख हमारा समय खा जाते हैं । वे हमें बेहोशी में रखते हैं । जो करना है वह रह जाता है और जो नहीं करना है उसे सँभालने में ही जीवन पूरा हो जाता है । समय का बहुत महत्त्व है । समय के मूल्य को जानो ।

श्रीमद् आद्य शंकराचार्यजी का कथन है :'एक करोड़ सोने की मोहरें देकर भी आयुष्य का एक पल भी बढ़ा नहीं सकते ।' अतः दिनचर्या इस तरह बनानी चाहिए कि एक क्षण भी व्यर्थ न जाय । एक भारतीय सज्जन ने जापान में देखा कि स्टेशन पर ट्रेन रुकने के बाद ड्राइवर नोटबुक में कुछ लिख रहा है । पूछने पर ड्राइवर ने बताया : ''मैं स्टेशन पर पहुँचने का समय लिख रहा हूँ । गाड़ी पहुँचाने में अगर एक मिनट भी देर करूँगा तो इसमें सफर करनेवाले ३००० यात्रियों के उतने ही मिनट बर्बाद होंगे और इस प्रकार मुझसे देशद्रोह का अपराध हो जायेगा ।''

सभी कर्मचारी अगर इस प्रकार सावधान रहकर समाजरूपी देवता का समय बचायें तो कितना अच्छा होगा !

जीवन में समय का सदुपयोग परमावश्यक है । इसके लिए आपको समय का पाबंद होना पड़ेगा । समय का सदुपयोग करके आप दुनिया की हर चीज प्राप्त कर सकते हैं परंतु दुनिया की सारी धन-दौलत लुटाकर भी गुजरे हुए समय को हासिल नहीं कर सकते । समय को धन की नाईं तिजोरी में नहीं रखा जा सकता । अतः सावधान ! समयरूपी अमूल्य धन नष्ट न कीजिये ।

नेपोलियन समय का ध्यान इस तरह रखता था, जैसे युद्ध के नक्शे का ! सेना की तो बात ही क्या, इस विषय में वह अपने सेनानायकों का भी बड़ा ध्यान रखता था । एक बार उसका मंत्री दस मिनट देर से आया । नेपोलियन के कारण पूछने पर उसने कहा : ''मेरी घड़ी दस मिनट लेट है ।'' तब नेपोलियन ने कहा : ''या तो तुम अपनी घड़ी बदल लो, नहीं तो मैं तुम्हें बदल दूँगा ।''

कलाई में घड़ी होते हुए भी आप अपने काम पर ठीक समय पर नहीं जा पाते हो तो आपका घड़ी बाँधना व्यर्थ ही है । टिक-टिक करती हुई घड़ी आपको यही संदेश देती है, सावधान करती है कि उद्यम और पुरुषार्थ ही जीवन है । निरंतर कार्य में लगे रहो, प्रभु-सुमिरन में लगे रहो। एक क्षण भी व्यर्थ मत जाने दो । जीवन में समय का बड़ा महत्त्व है । जो समय बर्बाद करता है, समय उसीको बर्बाद कर देता है ।

**याद रखिये,** अमूल्य समय का उपयोग अमूल्य से भी अमूल्य परमात्मा को पाने के लिए करना ही मनुष्य-जीवन का वास्तविक उद्देश्य है । जिन्होंने इस उद्देश्य को पाने का दृढ़ संकल्प करके समय का सदुपयोग किया है, वे ही वास्तव में महान बने हैं, उन्हींका जीवन कृतार्थ हुआ है ।

---

**(पृष्ठ ३० का शेष )**

उसका परिणाम स्वास्थ्य के लिए तथा समाज और देश के लिए भी हितकर नहीं होता । इस दृष्टि से भी साधक को हरेक काम, चाहे वह खान-पान संबंधी साधारण हो, चाहे परिवार, समाज, देश से संबंध रखनेवाला हो, ठीक-ठीक करना चाहिए ।

जिस समय साधक बिना कर्म किये रह सके अर्थात् उसे न तो कोई काम कर्तव्यरूप से प्राप्त हो और न किसी काम को करने के लिए किसी प्रकार की क्रियाशक्ति का वेग हो, उस समय कर्म करना आवश्यक नहीं है । कर्म करने की बात तो उसी समय के लिए कही जाती है, जब साधक के लिए कर्म करना आवश्यक हो जाय ।

सही प्रवृत्ति होने पर सहज निवृत्ति स्वतः प्राप्त होती है । सहज निवृत्ति ज्यों-ज्यों स्थायी और स्थिर होती जाती है, त्यों-ही-त्यों मन में स्थिरता, हृदय में प्रीति और विचार का उदय अपने-आप होता जाता है, जो कि मानव की माँग है ।

# ब्रह्मचर्य क्यों ?

## तात्त्विक ब्रह्मचर्य - ब्रह्म में रमण

ब्रह्मचर्य का तात्त्विक अर्थ तो है ब्रह्म में, आत्मा में, अपने परमात्मस्वरूप में चर्या करना अर्थात् चरना-रमना-रहना । ईश्वर का, अपने सत्यस्वरूप का विस्मरण यही अब्रह्मचर्य, यही विकार है । आत्मा में रमण करनेवाले महापुरुषों के हृदय, मन या शरीर में किंचित् भी विकारवृत्ति नहीं होती । इस ब्रह्मचर्य के सहज परिणामरूप स्थूल वीर्यरक्षा ठीक उसी प्रकार होती है, जिस प्रकार पूर्व दिशा में दृष्टि लगी हो तब पश्चिम दिशा की तरफ देखने की क्रिया का अपने-आप अभाव होता है ।

## स्थूल ब्रह्मचर्य - वीर्यरक्षा

ब्रह्मचर्य का दूसरा प्रचलित अर्थ लें तो उसमें केवल स्थूल वीर्यरक्षा का ध्येय होता है । मानवी स्पर्श-व्यवहार से दूर रहकर शारीरिक शक्ति स्खलित न होने देनेवाले को भी ब्रह्मचारी कहा जाता है । यहाँ वीर्यरक्षा से प्राप्त प्रचंड शक्ति अपने किसी विशेष मनपसंद कार्य में उपयोगी बने यह ध्येय होता है । जैसे - कोई वैज्ञानिक अपने शोधकार्यों की सिद्धि में, नेता अपनी देशसेवा के कार्य में, विद्यार्थी अपनी पढ़ाई में तो कोई रोगी अपने शरीर को स्वस्थ व शक्तिसंपन्न बनाने के उद्देश्य से वीर्यरक्षा करे तो यहाँ ब्रह्मचर्य का उद्देश्य केवल स्थूल वीर्यरक्षा ही है ।

## विषय-वासना क्या है ?

वासना की व्याख्या करते हुए 'श्री योगवासिष्ठ महारामायण' में कहा गया है :

**दृढभावनयात्यक्त पूर्वापरविचारणम् ।**
**यदादानं पदार्थस्य वासना सा निगद्यते ॥**

'आगे-पीछे का विचार-विवेक छूटकर भावना के तीव्र आवेग से पदार्थों का ग्रहण होना, इसे वासना कहते हैं ।'

'विषय' की व्याख्या करते हुए कहा गया है :

**विषीदन्ति धर्म प्रति नोत्सहन्ते ऐतेष्विति विषयाः ।**

'जिसमें गिरने से प्राणी धर्म का उत्साह गँवा बैठे उसका नाम विषय है ।' **(उत्तराध्ययन सूत्र, अ. : ४)**

**विषस्य विषयाणां च दूरमत्यन्तमन्तरम् ।**
**उपभुक्तं विष हन्ति विषयाः स्मरणादपि ॥**

'विष और विषय में बड़ा भारी अंतर है । विष तो खाने से मृत्यु लाता है, जबकि विषय तो स्मरणमात्र से ही नाश कर डालता है ।' **(उपदेश प्रासाद)**

**विषीयन्ते निबध्यन्ते विषयिणोऽस्मिन्निति विषयः ॥**

'जिसमें विषयी प्राणी बँध जाय उसका नाम विषय है ।' **(भगवती सूत्र : ८.१)**

## ब्रह्मचर्य पर धर्मशास्त्रों व महापुरुषों के विचार

'व्रतों में ब्रह्मचर्य उत्कृष्ट है'- ऐसा 'अथर्ववेद' में कहा गया है : **व्रतेषु वै वै ब्रह्मचर्यम् ।**

योग के ग्रंथों में ब्रह्मचर्य का अर्थ इन्द्रिय-संयम दिया गया है ।

**विद्या हि सा ब्रह्मचर्येण लभ्या ।**

'ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मविद्या को प्राप्त करना संभव है ।' **(महाभारत, उद्योग पर्व : ४४.२)**

**ब्रह्मलोकं ब्रह्मचर्येणानुविन्दति ।**

'ब्रह्मचर्य से ही ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है ।' **(छान्दोग्य उपनिषद् : ८.४.३)**

'वैद्यक शास्त्र' में इसको परम बल कहा गया है :

**ब्रह्मचर्यं परं बलम् ।** 'ब्रह्मचर्य परम बल है ।'

जैनागमों में ब्रह्मचर्य को धर्मरूपी पद्म सरोवर की सीमा/मर्यादा, सद्गुणोंरूपी महारथ का जुआ, व्रत-नियमरूपी धार्मिक वृक्ष का तना और सच्चरित्ररूपी महानगरी की अर्गला (सिटकिनी) कहा गया है । जिसने ब्रह्मचर्य की आराधना की है, उसने सभी व्रतों - शील, तप, विनय, संयम, अरे ! मुक्ति की भी आराधना की है ।

**अबंभचरियं घोरं पमायं दुरहिट्ठियम् ।**

'अब्रह्मचर्य घोर प्रमादरूप पाप है ।' **(दश वैकालिक सूत्र : ६.१७)**

अतः चलचित्र और विकारी वातावरण से अपनेको बचायें । पितामह भीष्म, हनुमानजी और गणेशजी का चिंतन करने से भी रक्षण प्राप्त होता है ।

धातुक्षय से तन कमजोर, मन कमजोर व मति मारी जाती है । आश्रम से प्रकाशित 'युवाधन सुरक्षा पुस्तक' बार-बार पढ़ें-पढ़ायें । संयमी, सशक्त और सभी क्षेत्रों में सफलता की कुंजी= ब्रह्मचर्य । **- श्री मलूकचंद शाह**

# नौ योगीश्वरों के उपदेश

(गतांक से आगे )

जो कुछ दृश्य-अदृश्य, कार्य-कारण, सत्य और असत्य है, सब कुछ ब्रह्म है । इनसे परे जो कुछ है, वह भी ब्रह्म ही है । वह ब्रह्मस्वरूप आत्मा न तो कभी जन्म लेता है और न मरता है । वह न तो बढ़ता है और न घटता ही है । जितने भी परिवर्तनशील पदार्थ हैं चाहे वे क्रिया, संकल्प और उनके अभाव के रूप में ही क्यों न हों - सबकी भूत, भविष्यत् और वर्तमान सत्ता का वह साक्षी है । सबमें है । देश, काल और वस्तु से अपरिच्छिन्न है, अविनाशी है । वह उपलब्धि करनेवाला अथवा उपलब्धि का विषय नहीं है, केवल उपलब्धिस्वरूप-ज्ञानस्वरूप है। जैसे प्राण तो एक ही रहता है परंतु स्थानभेद से उसके अनेक नाम हो जाते हैं । प्राण, अपान, उदान, व्यान, समान आदि एक ही प्राण के दसों प्रकार के भेद हो जाते हैं। वैसे ही ज्ञान एक होने पर भी इन्द्रियों के सहयोग से उसमें अनेकता की कल्पना हो जाती है । जगत में चार प्रकार के जीव होते हैं - अंडा फोड़कर पैदा होनेवाले पक्षी-साँप आदि, नाल में बँधे पैदा होनेवाले पशु-मनुष्य, धरती फोड़कर निकलनेवाले वृक्ष-वनस्पति और पसीने से उत्पन्न होनेवाले कीटाणु, जूँ, खटमल आदि । इन सभी जीव-शरीरों में प्राणशक्ति जीव के साथ लगी रहती है । शरीरों के भिन्न-भिन्न होने पर भी प्राण एक ही रहता है । सुषुप्ति-अवस्था में जब इन्द्रियाँ निश्चेष्ट हो जाती हैं, अहंकार भी सो जाता है-लीन हो जाता है अर्थात् लिंगशरीर (सूक्ष्म शरीर) नहीं रहता, उस समय यदि कूटस्थ आत्मा भी न हो तो इस बात की पीछे से स्मृति ही कैसे हो कि मैं सुख से सोया था । पीछे होनेवाली यह स्मृति ही उस समय आत्मा के अस्तित्व को प्रमाणित करती है । जब भगवान को प्राप्त करने की इच्छा से तीव्र भक्ति की जाती है, तब वह भक्ति ही अग्नि की भाँति गुण और कर्मों से उत्पन्न हुए चित्त के सारे मलों को जला डालती है । जब चित्त शुद्ध हो जाता है, तब आत्मतत्त्व का साक्षात्कार हो जाता है । जैसे नेत्रों के निर्विकार हो जाने पर सूर्य के प्रकाश की प्रत्यक्ष अनुभूति होने लगती है ।

**राजा निमि ने पूछा :** योगीश्वरो ! अब आप लोग हमें कर्मयोग का उपदेश कीजिये, जिसके द्वारा शुद्ध होकर मनुष्य शीघ्रातिशीघ्र परम नैष्कर्म्य अर्थात् कर्तृत्व, कर्म और कर्मफल की निवृत्ति करनेवाला ज्ञान प्राप्त करता है ।

एक बार यही प्रश्न मैंने अपने पिता महाराज इक्ष्वाकु के सामने ब्रह्माजी के मानस पुत्र सनकादि ऋषियों से पूछा था, परंतु उन्होंने सर्वज्ञ होने पर भी मेरे प्रश्न का उत्तर न दिया । इसका क्या कारण था ? कृपा करके मुझे बतलाइये ।

**अब छठे योगीश्वर आविर्होत्रजी ने कहा :** राजन् ! कर्म (शास्त्रविहित), अकर्म (निषिद्ध) और विकर्म (विहित का उल्लंघन) - ये तीनों एकमात्र वेद के द्वारा जाने जाते हैं । इनकी व्यवस्था लौकिक रीति से नहीं होती । वेद अपौरुषेय हैं ईश्वररूप हैं, इसलिए उनके तात्पर्य का निश्चय करना बहुत कठिन है । इसीसे बड़े-बड़े विद्वान भी उनके अभिप्राय का निर्णय करने में भूल कर बैठते हैं । (इसीसे तुम्हारे बचपन की ओर देखकर तुम्हें अनधिकारी समझ के सनकादि ऋषियों ने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर नहीं दिया) । ये वेद परोक्षवादात्मक हैं । ये कर्मों की निवृत्ति के लिए कर्म का विधान करते हैं । जैसे बालक को मिठाई आदि का लालच देकर औषध खिलाते हैं, वैसे ही ये अनभिज्ञों को स्वर्ग आदि का प्रलोभन देकर श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्त करते हैं । जिसका अज्ञान निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, वह यदि मनमाने ढंग से वेदोक्त कर्मों का परित्याग कर देता है तो वह विहित कर्मों का आचरण न करने के कारण विकर्मरूप अधर्म ही करता है । इसलिए वह मृत्यु के बाद फिर मृत्यु को प्राप्त होता है । इसलिए फल की अभिलाषा छोड़कर और विश्वात्मा भगवान को समर्पित कर जो वेदोक्त कर्म का ही अनुष्ठान करता है, उसे कर्मों की निवृत्ति से प्राप्त होनेवाली ज्ञानरूप सिद्धि मिल जाती है । जो वेदों में स्वर्गादिरूप फल का वर्णन है, उसका तात्पर्य फल की सत्यता में नहीं है, वह तो कर्मों में रुचि उत्पन्न कराने के लिए है। **(क्रमशः)**

साधकों के लिए

# सही प्रवृत्ति से सहज निवृत्ति स्वतः

जब तक मनुष्य का चित्त शुद्ध नहीं होता, तब तक वह जिसका चिंतन करना चाहता है, उसका नहीं कर पाता और जिसका नहीं करना चाहता, उसका चिंतन होता रहता है । जो काम उसे करना चाहिए, उसे नहीं कर पाता और जो नहीं करना चाहिए, उसे करता है ।

इसलिए साधक को चाहिए कि जिस समय जो काम उसे कर्तव्यरूप में प्राप्त हो, उसको करने में अपनी विवेकशक्ति और क्रियाशक्ति को पूर्णरूप से लगाकर पूर्ण धैर्य, उत्साह और सावधानी के साथ जिस ढंग से उसे करना चाहिए, वैसे ही करे । उसे करने में न तो आलस्य करे और न जल्दबाजी करे । हरेक प्रवृत्ति के आरम्भ में यह विचार कर ले कि जो काम मैं करना चाहता हूँ, उससे किसीके अधिकार का अपहरण तो नहीं होता है ? वह किसीके अहित का कारण तो नहीं है ? यह सोचकर अपने प्रभु की सेवा के नाते उस काम को कुशलतापूर्वक पूरा करे । ऐसा कोई काम न करे जिससे भगवान का संबंध न हो, जो भगवान की आज्ञा और प्रेरणा के विरुद्ध हो ।

प्रवृत्ति के बाद निवृत्ति का आना अनिवार्य है । अतः जो काम कर्तव्यरूप से प्राप्त हो, उसे उपर्युक्त प्रकार से पूरा कर देने पर निवृत्तिकाल में साधक के चित्त की स्थिरता और अपने प्रेमास्पद के प्रेम की लालसा की जागृति अवश्य होती है । अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिंतन अपने-आप शांत हो जाते हैं ।

कोई भी काम छोटा-बड़ा नहीं है । जिस काम को लोग साधारण और छोटा कहते हैं, वह कुशलतापूर्वक ठीक - जैसे जिस भाव से करना चाहिए, वैसे किये जाने पर साधक के लिए किसी भी उत्तम-से-उत्तम माननेवाले काम से कम नहीं रहता, क्योंकि कर्म करने की आवश्यकता किसी प्रकार के फल की कामना के लिए नहीं, किंतु कर्ता में जो क्रियाशक्ति का वेग है, उसे पूरा करने के लिए है ।

उक्त भाव से कर्म करने पर कर्तापन और भोक्तापन अपने-आप विलीन हो जाते हैं । जो उद्देश्य बड़े-बड़े साधनों से कठिनाई के साथ बहुत काल में पूरा नहीं होता, उसकी सिद्धि अनायास थोड़े ही समय में अपने-आप हो जाती है ।

कर्म के रहस्य को न जानने के कारण साधारण मनुष्य, जो काम जिस समय करना चाहिए, उसे उस समय नहीं करते एवं जब करते हैं, तब उसे भाररूप समझकर, जैसे-तैसे पूरा कर देने के भाव से करते हैं, पूरी शक्ति लगाकर नहीं करते । अतः उनका राग नष्ट नहीं होता । इससे जिस काल में वे कर्म से निवृत्त होते हैं, उस काल में भी उनके अंतःकरण में नाना प्रकार के व्यर्थ संकल्पों की स्फुरणा होती रहती है, क्योंकि उनमें क्रियाशक्ति का वेग बना रहता है अथवा वह काल आलस्य या निद्रा में चला जाता है ।

मनुष्य-जीवन का सब-का-सब समय अमूल्य है, अतः उसका एक क्षण भी व्यर्थ नहीं जाना चाहिए । उसमें भी जो निवृत्तिकाल है, जिस समय मनुष्य के सामने कोई करने योग्य कर्म नहीं रहता, वह समय तो खास तौर पर अपने परम प्रेमास्पद प्रभु का स्मरण-चिंतन करते हुए उनके प्रेम में डूबे रहने का ही है । ऐसे मौके में यदि साधक के चित्त में अनावश्यक संकल्प और व्यर्थ चिंतन होता रहे या तमोगुण की वृद्धि होकर वह समय जड़ता में व्यतीत हो जाय तो इससे बढ़कर दुःख देनेवाली भूल क्या हो सकती है ? इसलिए साधक को चाहिए कि उसे जो कर्म कर्तव्यरूप से प्राप्त हो, उसको पहले बताये हुए प्रकार से भगवान के नाते, उनकी आज्ञा और प्रेरणा के अनुसार, उनकी दी हुई शक्ति का कुशलतापूर्वक प्रयोग करके पूरा करता जाय । जैसे-जैसे साधक प्राप्त कर्तव्य को ठीक-ठीक पूरा करता जाता है, वैसे-ही-वैसे उसकी समस्त प्रवृत्तियाँ निवृत्ति में बदल जाती हैं ।

जो काम जिस प्रकार करना चाहिए, उस प्रकार धैर्य, उत्साहपूर्वक और सावधानी से न किये जाने पर

(शेष पृष्ठ : २७ पर)

## मंत्रदीक्षा से बदली
# जीवन की दिशा !

कौन कहता है कि सच्चे सद्गुरु से ली गयी मंत्रदीक्षा जिन्दगी की दिशा नहीं बदलती ? मेरा नाम डॉ. जौहरी लाल है । मैं जालंधर की बस्ती बावा खेल में क्लीनिक चलाता हूँ । जब मैंने गुरुदेव से दीक्षा नहीं ली थी तो मरीज को अस्पताल भेजने के बदले मुझे जो कमीशन मिलता था वह इस तरह है :

हार्ट ऑपरेशन - २५०००/-

एम.आर.आई. - २०००/-

सी.टी. स्केन - ८००/-

अल्ट्रा साउंड - २००/-

इसके अलावा लैबोरेटरी के जितने भी जाँच हैं उनका ५०% क्लीनिक में दे जाते थे । २७ सितम्बर १९९७ को परम पूज्य बापूजी से मंत्रदीक्षा लेने के बाद जीवन की दिशा ही बदल गयी । सितम्बर २००१ से पूनम व्रत लेने से जिन्दगी में, खान-पान, रहन-सहन में और भी निखार आया । अब किसी मरीज को मैं किसी अस्पताल में भेजता हूँ तो उसकी पर्ची पर पहले ही ५०% लैस लिख देता हूँ । साथ में मरीज को भी बता देता हूँ कि इतने ही पैसे देना । गुरुकृपा से मैं ओ.पी.डी. में प्रतिदिन १५० से २०० मरीज देख लेता हूँ । जब कमीशन लेता था तो मन में अजीब-सी चुभन होती थी लेकिन अब पाप जोर नहीं मारते । गरीब मरीज की सहायता करके विशेष आनन्द का अनुभव होता है । यह सब सद्गुरु की कृपा से ही संभव है । यह मंत्रदीक्षा का ही असर है ।

मैं परम पूज्य बापूजी को कोटि-कोटि प्रणाम करता हूँ, जिन्होंने मुझे जीवन जीने का सच्चा मार्ग दिखाया ।

**– डॉ. जौहरी लाल, जालंधर ।**

## वर्षों पुरानी
# बवासीर ठीक हुई

जुलाई २००५ की 'ऋषि प्रसाद' में खूनी और बादी बवासीर की उत्तम औषधि की बहुत उपयुक्त जानकारी छपी थी । मेरे पड़ोस में एक बहन को यह बीमारी बहुत दिनों से थी परंतु वह किसीको बतलाने में हिचकिचाती थी । उसकी आर्थिक स्थिति भी ठीक नहीं थी । बीमारी को सहन करते-करते उसका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया था, मानसिक स्थिति भी कमजोर हो रही थी । किसी बड़े अस्पताल में जाकर खर्चा करना उससे होनेवाला नहीं था ।

मैंने उसे 'ऋषि प्रसाद' का अंक पढ़ने को दिया और बवासीर के इलाज की जानकारी दी । यह सस्ता, सरल प्रयोग जानकर उसने तुरंत यह उपचार शुरू किया । एक सप्ताह बाद उससे बीमारी के बारे में पूछा तो उसने बताया कि उसकी बीमारी पूरी होने को है और वह अब अच्छा स्वास्थ्य-लाभ ले रही है । यह सुनकर मैं भी आनंद-विभोर हो गया और पूज्य गुरुदेव के बताये हुए इलाज को लाख-लाख धन्यवाद देने लगा । वह बहन 'ऋषि प्रसाद' की सदस्या बन गयी है व बड़ी श्रद्धा से 'ऋषि प्रसाद' पढ़ती है ।
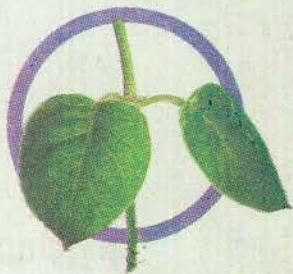
आजकल इस बीमारी के उपचार के लिए अस्पताल में बहुत खर्च करना पड़ता है, जो सामान्य आदमी पैसे न होने के कारण नहीं कर पाता और उसकी बीमारी बढ़ती ही जाती है । उपरोक्त प्रयोग का खूब प्रचार किया जाना चाहिए ताकि बवासीर के मरीज जल्द-से-जल्द इस बीमारी से छुटकारा पा सकें ।

**– भावसार एस.आर.**

**शिवप्रभु कॉलोनी, प्लॉट नं.- ९२ अ,**

**चितौड़ रोड, धुलिया (महा.) ।**

**दूरभाष : (०२५६२) २४९६७६.**

# जीवन्ती (डोडी)

आयुष्य के लिए हितकर, बल, वीर्य व ओज के वर्धन में श्रेष्ठ द्रव्यों को महर्षि चरक ने 'जीवनीय द्रव्य' कहा है । उनमें से एक है जीवन्ती ।

चतुर्मास में यत्र-तत्र पायी जानेवाली जीवन्ती को आयुर्वेद के शास्त्रकारों ने हरी सब्जियों में अग्रगण्य स्थान दिया है । इसे मराठी में हरणवेल या शिरदोडी तथा गुजराती में खरखोडी या डोडी कहते हैं । मधुर, शीतल, पचने में हल्की, बलदायी व त्रिदोषशामक (विशेषतः वात-पित्तशामक) होने के कारण शरद ऋतु में इसका सेवन विशेष लाभदायी है ।

जीवन्ती आँखों के लिए विशेष हितकारी, शुक्र धातुवर्धक, स्वर को सुधारनेवाली, हृदय के लिए बलदायी, कफनिस्सारक, रक्तगत पित्त को शांत करनेवाली, मूत्र के साथ जानेवाले वीर्य को रोकनेवाली, बल्य, रसायन व जीवनी शक्तिवर्धक है । अतः दृष्टिमांद्य, रतौंधी, हृदय की कमजोरी, मूत्रावरोध, अतिसार, खाँसी, रक्तपित्त, प्रमेह, दौर्बल्य व क्षय में लाभदायी है ।

## औषधि प्रयोग

(१) **रतौंधी में** इसके पत्तों की गाय के घी में बनायी हुई सब्जी लाभदायी है ।

(२) **धातुपुष्टि के लिए** जीवन्ती तथा अश्वगंधा का २-२ ग्राम चूर्ण मिश्रीयुक्त दूध के साथ लें ।

(३) बार-बार होनेवाले **गर्भपात** में जीवन्ती, यष्टिमधु व शतावरी चूर्ण प्रत्येक २-२ ग्राम तथा मिश्री दूध में मिलाकर लें । उष्ण पदार्थों का सेवन न करें ।

(४) **नेत्रज्योतिवर्धनार्थ** जीवन्ती के पत्तों की घी में बनायी हुई सब्जी अथवा ताजा रस नियमित लें ।

## श्रेष्ठ क्या है ?

| | | |
|---|---|---|
| जलों में | अंतरिक्ष जल | श्रेष्ठ है । |
| दुग्धों में | गाय का दूध | श्रेष्ठ है । |
| छाछों में | गाय के दूध की छाछ | श्रेष्ठ है । |
| मक्खनों में | गाय का मक्खन | श्रेष्ठ है । |
| घी में | गाय का घी | श्रेष्ठ है । |
| फलों में | काली द्राक्ष | श्रेष्ठ है । |
| अनाजों में | गेहूँ | श्रेष्ठ है । |
| दलहनों में | हरे मूँग | श्रेष्ठ हैं । |
| सब्जियों में | परवल | श्रेष्ठ है । |
| हरी सब्जियों में | जीवन्ती (डोडी) | श्रेष्ठ है । |

## शरद ऋतुचर्या

काल : सितम्बर – अक्टूबर

| शारीरिक स्थिति | त्याज्य वस्तुएँ | विशेष |
|---|---|---|
| * स्वाभाविक ही पित्त का प्रकोप होता है ।<br>* शरीर में लवण रस की वृद्धि होती है ।<br>* सूर्य का ताप बढ़ने से वर्षा ऋतु का संचित पित्त विदग्ध हो जाता है ।<br>* पित्त का पाचक स्वभाव नष्ट होने से बुखार, पेचिश आदि रोग होते हैं । | * तीखे, नमकीन, खट्टे, गरम एवं दाह उत्पन्न करनेवाले पदार्थ ।<br>* दही, खट्टी छाछ, इमली, टमाटर, पुदीना, कच्चे आम, मिर्ची, लहसुन, अदरक, हींग, अमचूर, राई, तिल, मूँगफली, सरसों, उड़द, कुल्थी, मकई, बाजरा, अनन्नास, बेलफल, शकरकंद, बैंगन, ककड़ी, भिंडी जैसे अम्लपाकी द्रव्य ।<br>* नमक की मात्रा कम करें । | हितकर<br>* चन्द्रविहार, गरबा नृत्य ।<br>* प्रातः हरड़ चूर्ण का मिश्री के साथ तथा रात्रि को त्रिफला चूर्ण का पानी के साथ सेवन ।<br>* प्रवालपिष्टीयुक्त गुलकंद, आँवला-मिश्री का समभाग चूर्ण (समिति में उपलब्ध), आँवले का मुरब्बा ।<br>* नीम, गिलोय, चिरायता, सुदर्शन चूर्ण का सेवन ।<br>* मुलतानी मिट्टी से स्नान, शीतली व शीतकारी प्राणायाम ।<br>अहितकर<br>* अधिक उपवास, अधिक श्रम ।<br>* धूप में घूमना । |

('ऋषि प्रसाद' प्रतिनिधि)

राजस्थान के छोटे-से शहर पीपाड़ में २८ व २९ जुलाई को सत्संग सम्पन्न हुआ । इस शहर में पूज्यश्री का यह प्रथम आगमन था । यहाँ पिछले तीन-चार साल से भारी अकाल था । न जाने क्यों इस क्षेत्र से मेघ देवता नाराज थे । लोगों ने पूज्यश्री से प्रार्थना की । सत्संग के दौरान उपस्थित श्रद्धालु श्रोताओं से पूज्यश्री ने पूछा : ''बरसात चाहिए ?' सभीने एक स्वर में हामी भरी और समस्त सत्संग मंडप में सन्नाटा छा गया । पूज्यश्री मौन हो गये । बारिश लाने के मंत्र का स्मरण किया । कुछ ही क्षणों में तेज बारिश शुरू हो गयी, बारिश के इंतजार में मुरझाये स्थानीय लोगों के चेहरों पर खुशी छा गयी । तेज बरसात देखकर लोग चकित हो गये, नाचने लगे । प्रार्थना और मंत्र के बल का प्रत्यक्ष दर्शन करके ईश्वर के प्रति लोगों की आस्था बढ़ी, आनंद बढ़ा । पूज्य बापूजी के समक्ष प्रत्यक्ष दैवी लीला को देखकर लोग निहाल हो गये । इसके हजारों प्रत्यक्षदर्शी रहे । भारतीय संस्कृति का मंत्र-विज्ञान अभी भी सक्षम है । शुद्ध हृदय व श्रद्धावान मंत्रशक्ति को जाग्रत कर लेते हैं और घटना घट जाती है । जैसे १९५६ में राजगोपालाचारी ने वर्षा करा दी ।

क्षेत्र में बस एक ही चर्चा आम हो गयी, सभीकी जुबां पर यही सुनायी दे रहा था कि ''बापू आये, बरसात लाये ।''

अगले दिन ३० जुलाई को दो दिवसीय सत्संग सूर्यनगरी जोधपुर में हुआ । पूज्यश्री ने यहाँ के इतिहास पर दृष्टिपात करते हुए बताया कि 'सन् १४५९ में राव जोधा द्वारा स्थापित जोधपुर क्षेत्र में पहले 'द्रुम कुल्य सागर' लहराता था, जो कालान्तर में भगवान श्रीरामजी के अग्निबाण से मरुस्थल में परिणत हो गया । महाभारतकाल में यह क्षेत्र 'जांगल देश' कहलाता था और कौरवों के शासन में आता था ।

मरुमण्डल, मरुवार, मारवाड़, मरुदेश, मरुधर नाम से विख्यात इस धोरारी धरती पर ब्रह्मस्वरूप गुरुवर के पधारते ही मेघदेवता ने कभी तेज बौछारों से तो कभी रिमझिम फुहारों से अपनी प्रसन्नता जाहिर की और प्राणिमात्र में अपना स्वरूप देखनेवाले ब्रह्मर्षि का स्वागत किया ।

व्यासपीठ पर विराजमान होते ही पूज्यश्री ने आत्मीयतापूर्ण लहजे में कहा : ''**किकर हो जोधपुरियां... अठै रावण का चबूतरा माथै सत्संग सुणनै आयो हो कांई।**'' उपस्थित विराट भक्तसमुदाय पूज्यश्री के सहृदय भाव और आत्मीयतापूर्ण वाणी सुनकर गद्गद हो उठा।

पूज्यश्री ने सत्संग-स्थल 'रावण का चबूतरा मैदान' का नाम बदलकर 'दशहरा मैदान' नामकरण किया । उपस्थित विशाल जनसमुदाय ने इसके लिए अपनी सहमति जतायी और ३० जुलाई से 'रावण का चबूतरा मैदान' 'दशहरा मैदान' बन गया ।

बापूजी की प्रेरणा से जनता जनार्दन, प्रशासन व अखबारों ने **'रावण का चबूतरा'** लिखने-कहने के बजाय **'दशहरा मैदान'** लिखना, कहना प्रारंभ कर दिया ।

पूज्यश्री ने कहा : ''प्रमाण-पत्रों से इतनी योग्यता विकसित नहीं होती जितनी सत्संग से होती है । आत्मा-परमात्मा का, प्रकृति का, सूक्ष्म जगत का तो ज्ञान होता ही है, व्यावहारिक जगत में भी सत्संगी कुशल हो जाता है ।

संयम, साहस, परदुःखकातरता जैसे गुण सत्संगी में सहज ही विकसित होते हैं । सत्संग से योग्यताओं में जो निखार आता है वह बड़ी-बड़ी डिग्रियों से नहीं आता । बड़ी-बड़ी डिग्रियोंवाले सुरेशानंद के आगे बैठते हैं ।

सत्संग से ऐसी योग्यताएँ विकसित होती हैं जिनके आगे ऐहिक डिग्रियों की योग्यताएँ नन्ही पड़ जाती हैं । कबीरजी, तुलसीदासजी, मेरे लीलाशाह बापू के पास प्रमाणपत्र नहीं थे लेकिन ऐहिक प्रमाणपत्र की थप्पियोंवाले उनके दासानुदास बन जाते थे ।

शास्त्र डंके की चोट पर कहते हैं :

**सो जानब सतसंग प्रभाऊ ।**
**लोकहुँ बेद न आन उपाऊ ॥**

लौकिक, वैदिक पढ़ाई उनके आगे कोई मायने नहीं रखती ।''

राजस्थान की राजधानी, गुलाबी नगरी जयपुर के गोविंदपुरा स्थित आश्रम में ७ से ९ अगस्त तक 'श्रावणी पूर्णिमा दर्शनोत्सव व सत्संग' सम्पन्न हुआ । यहाँ के भक्तों को सत्संग की महिमा बताते हुए पूज्यश्री ने कहा : ''सत्संग से वंचित व्यक्ति जगत के व्यवहार को सत्य मानकर शारीरिक, बौद्धिक व भावनात्मक तनाव में फँस जाता है और नासमझी का शिकार हो जाता है । ब्रह्मज्ञान के सत्संग से नासमझी का नाश होता है ।

सत्संग के बिना मनुष्य को जगत का व्यवहार सताता है और बिना सत्संग के भाग्य के कुअंक भी नहीं मिटते, इसलिए मनुष्य को नित्य सत्संग करना चाहिए ।''

पूज्य बापूजी ने ब्रह्मज्ञान के सत्संग, मंत्र साधना, मौन की महिमा, रक्षाबंधन की महत्ता के साथ-साथ शरीर को स्वस्थ व मन को प्रसन्न रखने की कुंजियाँ भी बतायीं । पूज्यश्री के पावन सान्निध्य में रक्षाबंधन महोत्सव के निमित्त जयपुर में सत्संग-आयोजन का यह प्रथम अवसर था ।

९ अगस्त की रात्रि में पूज्यश्री विमान से अमदावाद पहुँचे । जहाँ पूनम व्रतधारी सद्गुरु दर्शन के लिए पलकें बिछाये बैठे थे ।

१५ व १६ अगस्त को सूरत आश्रम (गुज.) में श्रीकृष्ण जन्माष्टमी के अवसर पर सत्संग व जन्माष्टमी महोत्सव संपन्न हुआ । इस वर्ष के श्रीकृष्ण जन्मोत्सव कार्यक्रम में सूरत में हाल ही में आयी बाढ़ से संदर्भित राहत कार्यक्रम का तीसरा चरण सम्पन्न हुआ । उपस्थित सत्संगी शिष्यों को गूगल, देशी घी आदि से बने धूप के पैकेट दिये गये तथा पूज्यश्री ने उन्हें घर-घर जाकर धूप करके रोगाणुओं से रक्षा का मंत्र व भगवन्नाम उच्चारण करने की विधि बतायी । पूज्यश्री ने सूरतवासियों को 'हाय-हाय...' करके हताशा-निराशा बढ़ाने के बजाय 'हरि-हरि' करके जीवन में नयी उमंग, सात्त्विक उद्यम, सत्साहस, धैर्य, सद्बुद्धि, सद्शक्ति तथा प्रतिकूल परिस्थितियों के सिर पर पैर रखकर फिर से उठ खड़े होने का पराक्रम जगाने का संदेश दिया । श्रीकृष्ण-तत्त्व में नित्य रमण करनेवाले पूज्यश्री ने बालकृष्ण के प्रिय भोग मक्खन-मिश्री का प्रसाद अपने करकमलों से लुटाया ।

इससे पूर्व बाढ़ आपदा से प्रभावित सूरतवासियों के प्रति सहानुभूति व्यक्त करते हुए पूज्यश्री ने केन्द्र व राज्य सरकार से सूरतवासियों के लिए टोल टैक्स व अन्य टैक्सों में २-३ वर्ष के लिए उदारता बरतने की अपील की ताकि इस प्राकृतिक आपदा से प्रभावित जनजीवन सामान्य हो सके ।

### पूज्यश्री के आगामी सत्संग कार्यक्रम

(1) 29 से 31 अगस्त, सरदार पटेल मेडिकल कॉलेज ग्राउन्ड, बीकानेर (राज.)। संपर्क : (0151) 2528091, 9829188925.
(2) 1 से 3 सितंबर, पानी की टंकी के पास, पोकरण रोड, रामदेवरा जि. जैसलमेर (राज.)।
संपर्क : 9829092466, 9829797999.
(3) 6 से 7 सितंबर (सुबह ९ बजे तक), सत्संग-पूर्णिमा दर्शन : अमदावाद आश्रम। संपर्क : 27505010-11.
(4) 7 (सुबह) से 10 सितंबर, पूर्णिमा दर्शन-सत्संग : दशहरा मैदान, फरीदाबाद (हरियाणा) । संपर्क : (0129) 2480608, 9811580503, 9818865556.

# आश्रम द्वारा बाढ़ राहत सेवाकार्य

तापी नदी के तट पर बसे सूरत (गुजरात) एवं आस-पास के क्षेत्रों में आयी भीषण बाढ़ में पूज्यश्री की पावन प्रेरणा से शिष्यों की टुकड़ियाँ युद्धस्तर पर राहतकार्यों में लग गयी थीं ।

अमदावाद आश्रम में सैकड़ों शिष्यों ने दिन-रात लगकर श्रमयज्ञ द्वारा सुखड़ी, पूड़ी, चिउड़ा, बिस्कुट आदि के पैकेट बनाये ।

८ अगस्त को सूरत के पांडेसरा, वराछा और कतारगाम क्षेत्रों में प्रभावित लोगों को गरमा-गरम खिचड़ी और कढ़ी खिलायी गयी तथा १५,००० भोजन पैकेट बाँटे गये । अमदावाद से ट्रेन द्वारा भेजने के लिए १०,००० भोजन पैकेट आश्रम द्वारा गाँधीनगर तथा अमदावाद के जिलाधीश कार्यालय को सुपुर्द किये गये । ९ अगस्त को २०,००० पानी के पाउच बाँटे गये । १० अगस्त को चने, मुरमुरे, गुड़ तथा मूँगफली के २०,००० पैकेट बाँटे गये ।

जहाँगीरपुरा, सूरत आश्रम में ७ से ८ फुट पानी भर गया था । पानी कम होते ही आश्रम के सेवक तत्काल राहतकार्य में लग गये । बिजली उपलब्ध न होने से जनरेटर द्वारा बोर का पानी निकालकर बाढ़ग्रस्तों के लिए भेजा गया । अंतिम जानकारी प्राप्त होने तक २५० टैंकर पीने का पानी पहुँचाया गया । आश्रम से पीने का पानी प्राप्त करने हेतु अपने व्यक्तिगत वाहनों को लेकर आये लोगों के लिए पानी की पूर्ण व्यवस्था की गयी ।

रांदेर, मजुरा गेट, चौक बाजार, नानपुरा, अमरोली, अठवा लाइन्स, घोडदोड़ रोड, मोरा भागल, वरीयाव, छापरा भाटा, कठोरगाम आदि क्षेत्रों में ५०,००० भोजन पैकेट बाँटे गये । वरीयाव गाँव के तहसीलदार को बाढ़ग्रस्तों में बाँटने के लिए गरमा-गरम खिचड़ी व कढ़ी सुपुर्द की गयी ।

पीड़ितों के उपचार के लिए ८ वैद्य, डॉक्टर एवं दो चलचिकित्सालय तत्काल सेवा में लग गये, जिनके द्वारा १३,००० से अधिक लोगों को उपचार-सेवा प्रदान की गयी । परिस्थितियों का आकलन कर सूरत, दाहोद और भीलोड़ा क्षेत्रों से ३ चल-चिकित्सालय बसें भी भेजी गयीं ।

अमदावाद आश्रम से ५५ साधक राहतकार्य के लिए गये, जिनके साथ सूरत के स्थानीय साधकों सहित ५०० सेवाधारी दिन-रात मानवरूपी महेश्वर की सेवा में लग गये ।
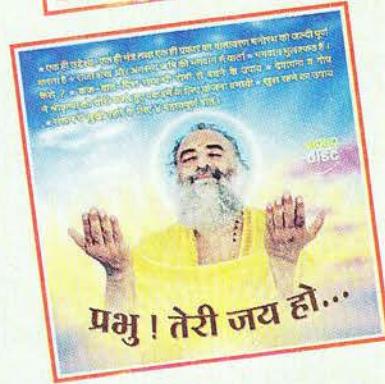
जहाँ पानी का स्तर कम था वहाँ ट्रैक्टर द्वारा भोजन-वितरण किया गया तथा जहाँ पानी का स्तर बहुत ही अधिक था वहाँ शासकीय हेलीकोप्टर तथा नावों द्वारा उपरोक्त सहायता प्रदान की गयी । १६ अगस्त को असरग्रस्त इलाकों में वैदिक पद्धति से निर्मित जीवाणुनाशक धूप करने का अभियान कतारगाम धनमोरा से शुरू किया गया।

वल्लभीपुर जि. भावनगर (गुज.) के साधकों ने बूँदी और गाँठिये के पैकेट जिलाधीश को सुपुर्द किये । लुणावाड़ा (गुज.) समिति द्वारा खारोल, राबड़िया क्षेत्रों में भोजन पैकेट बँटवाये गये । नासिक (महाराष्ट्र) में ९ अगस्त से नासिक के बाढ़ प्रभावित क्षेत्रों में २००० प्रभावित लोगों को प्रतिदिन भोजन खिलाया गया । अमदावाद के विभिन्न बाढ़ग्रस्त विस्तारों में १५ अगस्त से बाढ़पीड़ित लोगों को प्रतिदिन भोजन खिलाने की सेवा जारी रही । अंतिम जानकारी प्राप्त होने तक यह सेवाकार्य जारी था ।

चन्द्रपुर (महा.) में आयी बाढ़ से प्रभावित लोगों में नागपुर आश्रम द्वारा भोजन-व्यवस्था करायी गयी । यवतमाल (महा.) के बाबुलगाँव तहसील के अन्तर्गत आनेवाले बाढ़ग्रस्त कोटंबा, लोनी, वेणी गाँव में कपड़े, अनाज तथा साहित्य वितरण किया गया ।
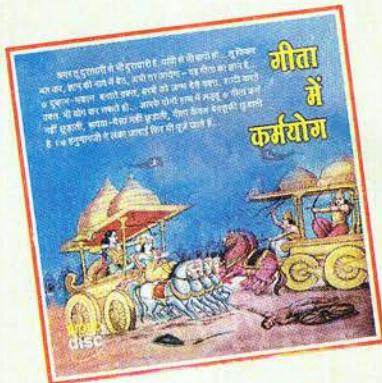
जमशेदपुर (झारखंड) में मानगो क्षेत्र के ५०० घरों में बाढ़ का पानी भर गया था । यहाँ भी भोजन-व्यवस्था करायी गयी ।

## देखिये और दिखाइये...
## पूज्य बापूजी के सत्संग-अमृत की विडियो सी.डी.

1 September 2006

RNP.NO. GAMC 1132/2006-08
Licenced to Post without Pre-Payment
LIC NO. GUJ-207/2006-08
RNI NO. 48873/91.
DL (C) - 01/1130/2006-08.
WPP LIC.NO. U (C)-232/2006-08
G2/MH/MR-NW-57/2006-08
WPP LIC NO. NW-9/2006

कर्म में कुशलता

मंत्रदीक्षा से जीवन-विकास

६ वी.सी.डी. का मूल्य रु. २१०
(डाकखर्च सहित रु. २५०)

मनीऑर्डर अथवा डी.डी. भेजते समय कैसेट का नाम अवश्य लिखें ।

पता : सत्साहित्य विभाग, संत श्री आसारामजी महिला उत्थान आश्रम, संत श्री आसारामजी बापू आश्रम मार्ग, पिन. ३८०००५.

## संत श्री आसारामजी आश्रम व उसकी सेवा समितियों द्वारा देश के विभिन्न बाढ़पीड़ित स्थानों पर किये जा रहे सेवाकार्य

Posting at Rishi Prasad PSO between 1st to 14th of E.M. Back issue at PSO-AHD * Posting at ND.PSO on 5th & 6th of E.M. * Posting at MBI Patrika Channel on 9th & 10th of E.M.